RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

ISSN NUMBER : 2455-9717

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 1, अंक : 3

त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2016

मूल्य : 50 रुपये

पंचतत्व-

तुम्हें प्रेम करना प्रकृति को प्रेम करना है
तुम्हारी सम्पूर्ण देह पंच तत्वों का सबसे खूबसूरत मेल है

तुम्हारे धरती से सख्त सीने पर सर रखकर जान जाती हूँ
कि आख़िर क्यों मिल जाना होता है एक दिन मिट्टी से
प्रेयस की धड़कन मिट्टी की पुकार है
तुम ही वो माटी हो जिससे गढ़ रही हूँ प्रतिदिन
रोज़ थोड़ी सी तुम जैसी हो रही हूँ

तुम्हारी गर्दन के वलयों से फूटते हैं जल प्रपात
इस मीठे जल को चूमकर बुझती है मेरी नेह की प्यास
और अगले ही पल मैं पहले से ज़्यादा प्यासी हो उठती हूँ
प्यास जल से ज़्यादा है और जल प्यास से बहुत ज़्यादा

इन दो भुजाओं के मध्य टँगा हुआ है सम्पूर्ण आकाश
जो मुझे बाँधकर कर देता है पूर्ण मुक्त
न सीमा है आकाश की, न मेरे विचरण की

मेरी देह में प्रवेश करती है यज्ञ की एक पावन लौ
एक ओज से भरी अग्नि जल उठती है दो देहों के हवनकुंड में
एक सुगन्धित ताप से निखर उठता है हमारा प्रेम

मेरी देह की बाँसुरी में तुम अपनी साँसें फूँकते हो
दसों दिशाएँ बज उठती हैं प्रेम संगीत से
प्रकृति का कण-कण झनझनाता है
पंछियों के गले से सुर फूट पड़ते हैं
नदियों में जलतरंग बजाती हैं मछलियाँ
बाँध नुपुर नाचते हैं देव और गन्धर्व

हम ही आदम और हव्वा है
आसमान से देखते हैं हमारी देहों को नृत्य करते

देहें रागरंग रचती हैं
प्रकृति रचती है केवल प्रेम

तुम्हे प्रेम करना प्रकृति को प्रेम करना है
-पल्लवी त्रिवेदी

विश्व भर के हिन्दी साहित्यकारों के साक्षात्कारों का अनूठा संग्रह

"वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ" (दो भागों में)

संपादक तथा साक्षात्कारकर्त्ता : सुधा ओम ढींगरा

ISBN:
978-93-81520-03-1
वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 1
प्रथम संस्करण : 2013
द्वितीय संस्करण :
जनवरी 2017
मूल्य : 350.00 रुपये
पृष्ठ : 232

दोनों भाग आकर्षक सेट में भी उपलब्ध मूल्य 750 रुपये

भाग 1 में शामिल रचनाकार

अमेरिका से

वेद प्रकाश 'वटुक'
सुषम बेदी
सुदर्शन प्रियदर्शिनी
अनिल प्रभा कुमार
पुष्पा सक्सेना
डॉ. मृदुल कीर्ति
रेखा मैत्र
देवी नागरानी
शशि पाधा
राकेश खंडेलवाल
अनिता कपूर

कैनेडा से

प्रो. हरिशंकर आदेश
श्याम त्रिपाठी

ब्रिटेन से

तेजेन्द्र शर्मा
उषा राजे सक्सेना
अचला शर्मा
दिव्या माथुर

खाड़ी देशों से

कृष्ण बिहारी
पूर्णिमा वर्मन

डेनमार्क से

अर्चना पैन्यूली

नार्वे से

सुरेश शुक्ल

भारत से

एस. आर. हरनोट
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

संपादक का साक्षात्कार

सुधा ओम ढींगरा
साक्षात्कारकर्त्ता- कंचन चौहान

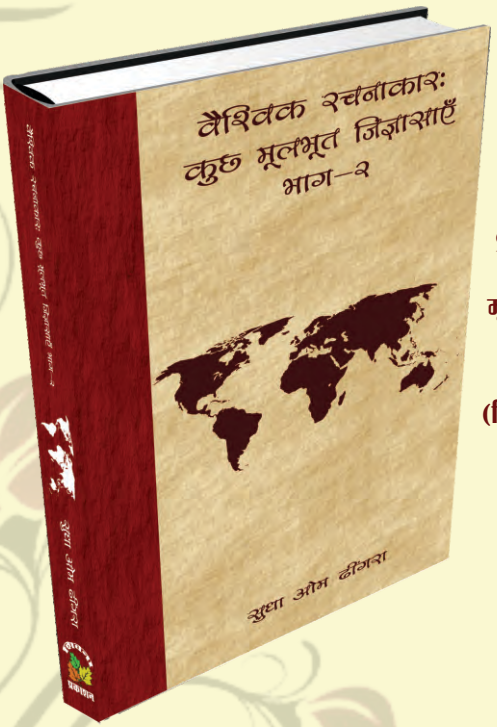

ISBN:
978-93-81520-44-4
वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ - भाग 2
प्रथम संस्करण :
जनवरी 2017
(विश्व पुस्तक मेला नई दिल्ली)
मूल्य : 400.00 रुपये
पृष्ठ : 280

दोनों भाग आकर्षक सेट में भी उपलब्ध मूल्य 750 रुपये

भाग 2 में शामिल रचनाकार

अमेरिका से

उषा प्रियंवदा
कविता वाचक्नवी
अफ़रोज़ ताज
धनंजय कुमार
अंशु जौहरी
अभिनव शुक्ला
रचना श्रीवास्तव
दीपक मशाल

जॉन कॉल्डवेल

कैनेडा से

सुमन घई
शैलजा सक्सेना

ब्रिटेन से

उषा वर्मा

नीना पॉल
कादम्बरी मेहरा
अरुणा सब्बरवाल

ऑस्ट्रेलिया से

रेखा राजवंशी

मॉरीशस से

डॉ. उदयनारायण गंगू

फीजी से

अनिल जोशी

भारत से

कमल किशोर गोयनका
प्रेम जनमेजय
सुशील सिद्धार्थ

संपादक का साक्षात्कार

सुधा ओम ढींगरा
साक्षात्कारकर्त्ता-पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9584425995,
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

Shivna Prakashan Books Available At
All Leading Online Shopping Stores

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक
शहरयार

सह संपादक
पारुल सिंह

आवरण चित्र एवं कविता
पल्लवी त्रिवेदी

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
बैंक खाते का विवरण :
BANK OF BARODA
Name: Shivna Prakashan
Bank Name: Bank Of Baroda
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000255
IFSC Code: BARB0SEHORE

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 1, अंक : 3
त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2016
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

कुछ यूँ...
आवरण कविता / पल्लवी त्रिवेदी

संपादकीय / 2

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 3

शख़्सियत (मलका नसीम)
डॉ. विजय बहादुर सिंह / 4

कविताएँ
कुछ नज़्में / राजेश मिश्रा / 8
दो कविताएँ / रोज़लीन / 9

कहानी
सेंसलेस / महेश शर्मा / 10

आलोचना
राकेश बिहारी / 12

फिल्म समीक्षा के बहाने
पिंक / वीरेन्द्र जैन / 14

डायरी
कृष्णा अग्निहोत्री / 16

ग़ज़ल
इस्मत ज़ैदी 'शिफ़ा' / 22

ख़बर-कथा
हेलो कौन भावना दीदी / समीर यादव / 23

पेपर से पर्दे तक... / कृष्णकांत पंड्या / 27

समीक्षा
पाँच विधाएँ - पंच कन्याएँ / 28
सौरभ पाण्डेय / निकला न दिग्विजय को सिकंदर / 29
दिविक रमेश / शुक्रगुज़ार हूँ दिल्ली / 31
अमृतलाल मदान / छुअन तथा अन्य कहानियाँ / 33
महेश कटारे / उत्तरायण / 34

पड़ताल
बाल-रंगमंच : सम्भावनाएँ और चुनौतियाँ / डॉ. प्रज्ञा / 35

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

संपादकीय

शराब और साहित्य

शहरयार

पिछले दिनों बहुत साहित्यिक यात्राएँ हुईं, हर जगह मैं केवल दर्शक ही था। देखने वाला। और बहुत कुछ देखा इन यात्राओं में। जो देखा उसकी बात करने से पहले यह बात कि बहुत से लोग कह रहे हैं कि यह संपादकीय मैं नहीं लिख रहा, कोई और लिख रहा है। यह ग़लतफ़हमी मेरे लिए बहुत अच्छी है। क्योंकि इसके चलते मैं बहुत कुछ लिख सकता हूँ। जब मैं कुछ लिख ही नहीं रहा तो, चाहे जो चाहे लिखूँ। हाँ तो मैं कह रहा था कि पिछले दिनों शिवना प्रकाशन के काम से बहुत से साहित्यिक कार्यक्रमों में जाने का अवसर मिला। अपने को तो कोई पहचानता नहीं है, इसलिए यह आसानी होती है कि मज़े से देखते रहो तमाशा। तमाशा ? जी हाँ तमाशा ही तो है। बना कर फ़क़ीरों का हम भेस ग़ालिब, तमाशा ए अहले करम देखते हैं। समझ में नहीं आता कि कार्यक्रम साहित्यिक हैं या कुछ और ? कुछ और की बात मैं करना नहीं चाहता था लेकिन मुझे यह सुविधा है कि मैं तो लिख ही नहीं रहा हूँ, लिख तो कोई और रहा है, तो अपने को क्या डर। पिछले दो महीनों में मैंने क़रीब दस साहित्यिक कार्यक्रम देखे, अलग-अलग शहरों में। अलग-अलग शहर और अलग-अलग प्रारूप होने के बाद भी सबमें एक समानता थी। सबमें कार्यक्रम के समापन के बाद होने वाले विषयांतर को लेकर एक प्रकार की आतुरता थी। यह आतुरता थी कार्यक्रम के पश्चात् होने वाले डिनर के पहले होने वाले पीने-पिलाने की। ऐसा लगा कि लोग कार्यक्रम हेतु तो आए ही नहीं हैं, इस पश्चात् हेतु ही आए हैं। मेरे जैसे नवागत के लिए तो यह हैरत में डालने वाला अनुभव था, लेकिन मुझे बताया गया कि धीरे-धीरे इसकी आदत हो जाएगी।

शराब और साहित्य के अंर्तसंबंधों की चर्चा कई बार सुनी है, बहुत कुछ पढ़ा भी उस बारे में लेकिन जब आँखों से देखा तो वैसा नहीं था जैसा सुना गया था। एकाध जगह तो यह भी देखने में आया कि कुछ बड़े नाम वाले साहित्यकार मुख्य कार्यक्रम में आने का जिनके पास समय नहीं था, वे पश्चात् वाले कार्यक्रम में जो किसी दूसरे स्थान पर था, पूरी गरिमा और ठसक के साथ मौजूद थे। ठसक इस बात की कि केवल श्रोता की हैसियत से बैठेंगे हम कार्यक्रम में ? केवल श्रोता की हैसियत से। हमारी पृष्ठभूमियों को अध्यक्षीय कुर्सियों के अलावा किसी और कुर्सी पर बैठने की आदत ही कब है। पश्चात् वाले कार्यक्रम में तो हम उपकृत करने के लिए आ गए हैं। और जब आ गए हैं तो अपनी पूरी की पूरी गरिमा को भी साथ लेते आए हैं। अब जितने भी चाँद इस गरिमा से लग सकते हैं वह इसी पश्चात् वाले कार्यक्रम में लगवा लो।

हर जगह मैंने देखा कि कार्यक्रम पूरा होने से पूर्व ही कुछ लोग हॉल से बाहर निकल कर टहलने लगे थे, एक-दूसरे से पूछ रहे थे -कहाँ है ? पहले-पहल तो मेरे भी समझ में नहीं आया कि क्या कहाँ है ? फिर एक दो कार्यक्रमों के बाद समझ में आ गया कि क्या कहाँ है। कुछ लोग अध्यक्षीय वक्तव्य पूरा होने के पूर्व ही कहाँ की दिशा में निकल गए। जहाँ वो गए थे वहाँ हमको भी जाना था। एक कोने में खड़ा मैं सब कुछ देखता रहा। देखने के सिवा मेरे पास कोई चारा भी नहीं था। क्योंकि सब जगहों पर डिनर तभी लगना था जब यह वरिष्ठ लोग पश्चात् वाला कार्यक्रम ठीक प्रकार से संपन्न कर लें। पश्चात् वाले कार्यक्रम के बाद मुझे वही महसूस हुआ जो कई दूसरे स्थानों पर भी हुआ, और बहुत हुआ। तो फिर कुछ देर पहले मंच से जो बड़ी-बड़ी नैतिकता की बातें की जा रही थीं उनका क्या? बात यह नहीं है कि शराब को लेकर मेरी कोई आपत्ति है, आपत्ति इस बात को लेकर है कि शराब के बाद लोग वैसे ही होते जा रहे थे, जैसे मेरे छोटे से गाँव में रात के समय मुझे अक्सर भटकते हुए दिखते हैं। डिनर की प्रतीक्षा कर रहा मैं एक कोने में खड़ा अपने गाँव के उन लोगों और इन विशिष्ट लोगों में अंतर तलाश करने की कोशिश कर रहा था। लेकिन असफल रहा। कोई अंतर था ही नहीं। मोहभंग होने जैसी स्थिति में था मैं पहले तो। जब इस दुनिया से जुड़ा तो मेरे दिमाग़ में बहुत ऊँची सोच वाले बुद्धिजीवियों की छवि थी, मैं मान कर चलता था कि यही लोग हैं जो बदलाव लाते हैं, अपनी रचनाओं से और अपने विचारों से। हर मोह की नियति होती है कि वह भंग होता है सो मेरा भी हुआ। दु:ख इस बात का है कि बहुत जल्दी ही हो गया।

आशा है मेरी बात को किसी बच्चे की बचकानी सोच समझ कर माफ कर देंगे। छोटन को उत्पात। हो सकता है भविष्य में मैं भी पीना सीख जाऊँ और केवल पीने के लिये ही कार्यक्रमों में जाऊँ, तब मुझे भी अपनी यह सोच बचकानी ही लगेगी। शिवना साहित्यिकी का यह नया अंक आपके हाथों में हैं, जैसा हमने कहा था कि इस पत्रिका को रूटीन पत्रिका से हटकर कुछ बनाने की कोशिश करेंगे, तो वह कोशिश इस अंक में भी की गई है। कुछ नए प्रकार के लेख इस अंक में हैं। बाकी नियमित सामग्री और नियमित स्तंभ तो पूर्ववत् हैं ही। आपकी प्रतिक्रियाओं के इंतज़ार में....

आपका अपना,

शहरयार

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

शख़्सियत

दो विरासतों की संधि पर खड़ी मलका नसीम

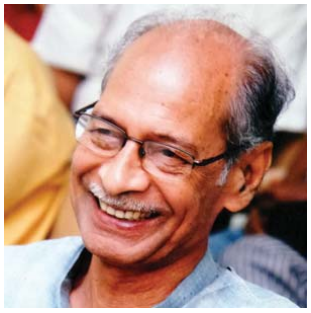

डॉ. विजय बहादुर सिंह

मलका से मुलाकात का वाकया कुछ इस तरह घटा था कि भूलता ही नहीं। हर वक्त अपने होने के एहसास को पूरी मुस्तैदी से सम्हाले हुए वे एक ऐसी दोस्त शायरा हैं कि उनके इस एहसास को न केवल इज़्ज़त करनी पड़ती है, बल्कि कभी-कभी उसकी सम्हाल में मलका का साथ भी देना पड़ जाता है। वे हैं ही ऐसी, कुछ-कुछ नाज़ुक, कुछ-कुछ सख़्त सी, हक़ीक़त जबकि यह कि न तो वे नाज़ुक हैं न सख़्त, जैसा होना चाहिए मलका बिल्कुल वैसी ही हैं। एकदम घरेलू बातचीत की तरह सहज और बेतकल्लुफ़, फिर भी कुछ ऐसी कि उसकी हदें न पार को जा सकें। याराना कोई दिखावे की चीज़ वैसे कभी नहीं होता और मलका ने कभी इसे दिखाने की कोई कोशिश भी नहीं की। वे उन लोगों में से हैं जो ज़िन्दगी को बड़ी शिद्दत से जीना चाहते हैं पर उस जीने के बारे में कभी अपने मुँह से कुछ कहना सिरे से नापसन्द करते हैं।

इधर बरसों से हमारी मुलाकात नहीं हो सकी। मेरे भोपाल आने से काफी पहले मलका अचानक भोपाल छोड़कर चली गईं। एकाध सूचनात्मक ख़त और होली-दीवाली के खूबसूरत कार्ड्स गहरी अंतरंगता से लबरेज़। पता नहीं मुझे उनका कैसा जवाब देना था जो शायद दिया न जा सका और अब तो यह ख़तो-किताबत भी बस याद का हिस्सा है। मलका जब भी याद आती हैं, मैं अपनी ग़ैर ज़िम्मेदारियों को कोसता हूँ और सोचा करता हूँ कि जीने के लिए कैसी हिम्मत तत्परता और गर्म जोशी चाहिए। साथ देने के लिए उससे भी कुछ ज़्यादा।

एक उपन्यास को पढ़ने के बाद मेरी एक अंतरंग सहेली ने शायद मुझे नसीहत देने के ख़याल से कहा था-'इस लेखक को स्त्रीमन की समझ है।' मैं उसके इस कथन को आज तक नहीं भूल पाया। अपने मित्रों के मन को समझने की कोई बेहतर कोशिश मुझमें उपज पाई हो, यह भी पूरा सच नहीं है। झूठ तो खैर किसी भी स्थिति में नहीं। मैं खुद या तो हिम्मत हार चुका हूँ या फिर कुछ ज़्यादा ही दुनियादार हो उठा हूँ और दुनियादारी अक्सर हमारी हिम्मतें छीन लेती है। हिम्मतें ही क्यों कभी-कभी तो आदमीयत भी। हो सकता है अब मुझमें सिर्फ दुनियादारी भर बची हो। रचनात्मक जीवन के लिए इससे अधिक बुरी खबर और क्या हो सकती है। मैं इसे बार-बार झुठलाना चाहता हूँ, सफलता मिल पाएगी या नहीं, इसे यूँ समझा जा सकता है कि मैं आज भी अपने आपको ही ज़्यादा प्यार करता हूँ। आत्मरति की हद तक। हमीं प्रेमी भी हों और प्रिय भी तब आस-पास की चीज़ें, विचार, घटनाएँ और लोग सिर्फ प्रयुक्त किए जा रहे होते हैं। उनका 'आपा' हमारी समझ में नहीं आता। यह आत्मरति इस रूप में बेहद ख़तरनाक है। पूरा समाज अब इसी ख़तरे की ओर बढ़ा चला जा रहा है, एक मलका को छोड़कर।

मलका चीज़ों और लोगों को प्रयोग करने के ख़याल से शायद ही कभी देख पातीं हों। वे उनके साथ होना चाहती हैं जैसे एक बराबर का दोस्त। उनके साथ यदा-कदा रह कर मैंने महसूस किया कि वे मानी तो हैं किन्तु अभिमानी कदापि नहीं। और उनका यह मन गोकि इलाहाबाद में रचा गया है पर उसका पकाव तो मालवा की माटी का है। इलाहाबाद की सहज स्निग्धता, मुसलिम परिवारों की जानी पहचानी तहज़ीब और मालवा की माटी की रुक्ष तरलता में रची-पगी मलका जिस गंगो-जमन का एहसास कराती हैं, उसमें इस भ्रम का पनप जाना आसान है कि वे इलाहाबाद की हैं या मालवा की। हिन्दू हैं या फिर मुसलमान। मलका सब हैं या फिर कुछ भी नहीं। शायरी से उधार लेकर कहूँ तो-जहाँ सर चाहिए सर है जहाँ दिल चाहिए दिल है। चीज़ें कहीं इतने ठिकाने और करीने से हों तो फिर होने को और बाकी रह क्या जाता है।

मलका सचमुच खूबसूरत हैं। ठीक अपनी शायरी की तरह। या फिर उस खूबसूरत याद की तरह जो हर वक़्त हमारे एहसासों के भीतरी कक्षों में किसी प्रिय तस्वीर की तरह टँगी रहती है। यही याद उनकी शायरी में भी है-

कुछ शिकस्ता ख्वाब लेकर शबनमी पलकों के साथ
हाल की दहलीज़ पर बैठी है यादे रफ़्तगाँ
दिल के वीराने में सरसब्ज़ है यादों का शजर
गरमियों में भी हरा रहता है पीपल जैसे
कभी मियाँ ग़ालिब ने सोचा था -
कोई वीरानी सी वीरानी है
दश्त को देखकर घर याद आया

मलका अपनी यादों को गरमियों के हरे-भरे पीपल से जोड़कर जैसा वातावरण तैयार करती हैं, उससे हिन्दुस्तान में लिखी जाने वाली उर्दू शायरी की पहचान बनती है। वीरानगी, सरसब्ज़ियत और 'यादों का शजर' तक तो वे नया कुछ करती दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन जैसे ही हम हरे-भरे पीपल को झुलसा डालने वाली गरमियों के बावजूद देख पाते हैं, यह अपने आप साबित होता चला जाता है कि मलका ने शायरी की परम्परा से जो अर्जित किया है, उसमें कुछ इज़ाफा भी वे करना चाहती हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है जैसे वे परम्परा के उस पार चली जाना चाहती हैं। याद पर ही लिखते हुए शायद यह कोशिश भी उन्होंने सोची हो-

बह रहा है जो किसी की याद में

पार वह दरिया उतर कर देखना

गहराई और चुनौती से उनका यह भिड़ना उनके स्वभाव में है। गहराई, खामोशी और खुद अपने आपको चुनौतियों के बीच रखते हुए, खुद से ही खुद का मुकाबिला करवाते चलना। यह जो अनोखा अंदाज़ है उनका, कई बड़े कहे जाने वाले शायरों की अपनी ही पूँजी नहीं है। थोड़ा बहुत हक़ मलका का भी इस पर बनता है। उर्दू शायरी में यह खुद्दारी हमेशा रही है और मलका में भी बाक़ायदा मौजूदा है।

याद का जो आलम उनकी शायरी में चित्रित है, उसमें बेसब्री भले न हो इन्तज़ार का ज़बरदस्त रेगिस्तान भरी-पूरी इंसानी फितरतों और उम्मीदों के साथ यहाँ से वहाँ तक फैला पड़ा है, पक्के इरादों और भरोसों से भरे वायदों के साथ-

सदा बनकर, घटा बनकर,
फ़ज़ा बनकर, सबा बनकर
न जाने कब मैं आ जाऊँ
दरीचा तुम खुला रखना
इन्हीं राहों से लौटूँगी
न आऊँ यह भी मुमकिन है
मगर तुम रेत पर महफूज़
अपने नक्शे-पा रखना

यह जो अपने आप पर भरोसा है, वायदादारी है आशिक के प्रति गहरा लगाव और एक खास तरह की संजीदगी है यही तो मलका हैं। वो यह भी जानती हैं कि ज़माना क्या है, लोग कैसे-कैसे हैं, और मौका हाथ लगते ही क्या कुछ न कर बैठेंगे। इसी ग़ज़ल में तभी तो वे इस समझाइश पर भी उतरती हैं-

न पढ़ ले कोई तहरीरें तुम्हारे ज़र्द चेहरे की
दरो-दीवार घर के शोख़ रंगों से सजा रखना

याद और प्रेम जैसी गहरी, कोमल और पवित्र चीज़ों का अस्तित्व भले ही असाधारण हो पर इन असाधारण चीज़ों को, ख़तरा हमेशा ही, उन साधारण और बेहद मामूली चीज़ों से रहता आया है, जो अपने अस्तित्व धारण करने के पल से ही ऐसी पवित्र और कोमल चीज़ों पर हमलावर रही आई हैं। दुनियादारी से निपटने के लिए इस दुनिया से ही हमें उसके तौर-तरीके सीखने पड़ते हैं। दरो-दीवार और घर को शोख रंगों से सजाना तभी तो कभी-कभी ज़रूरी हो बैठता है। कोमल और पवित्र जो भी हमारे

पास है, उसकी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी ही नहीं, तमीज़ भी तो हममें होनी चाहिए। मलका अपने पाठकों में यह तमीज़ पैदा करना चाहती हैं। यही उनकी शायरी की स्कूलिंग है। रोज़-रोज़ बदलती हुई दुनिया में तब रहने का सलीका क्या है? उनकी शायरी हमें यह भी सिखाती है। पर नीति-कथनों के या फिर आगाह से भरी भाषा के जरिए नहीं; एक ऐसी गहरी समझदारी और सांकेतिकता के सहारे, जिसे सिर्फ मलका ही कर पाती हैं। आँखें मूँद तिनके की तरह अंधड़ के साथ बहना या फिर किसी ठूँठ की तरह बे-असर खड़े रहना उन्हें नहीं मंजूर। ये दोनों ही अतियाँ हैं। स्त्री जब भी इन हदों को पार करती है, सभ्यताएँ संकटग्रस्त हो उठती हैं। लेकिन स्त्री ही क्यों, कोई भी। मलका भी इन हदों का अतिगमन नहीं करतीं, पर इनके साथ कुछ ऐसा ज़रूर करती हैं; जैसे पुरानी दीवालों या चट्टानों को फोड़तीं कुछ कोंपलें निकल आया करती हैं। यह कठिन जिजीविषा उनकी शायरी में बनी ही रहती है। इसी अर्थ में वे उम्मीद और इंतज़ार की शायरा हैं। फ़ैज़ ने एक जगह लिखा है-

आस उस दर से टूटती ही नहीं
जा के देखा, न जा के देख लिया

मलका ने भी उम्मीद का या फिर उम्मीद ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा है। कोशिशों का सिलसिला ज़रूर यहाँ ख़ामोश है। इस के बदले कुछ और है जो इस शेर में दर्ज है-

अरमाँ का शजर सूख चला जर्द हैं पत्ते
लगता है कि इस पर भी अमरबेल चढ़ी है
हम शहरे तमन्ना में इसे ढूँढ़ रहे हैं
आहट है कि तन्हाई के जीने पे खड़ी है

आहट का तन्हाई के जीने (सीढ़ी) पर खड़े होकर इन्तज़ार करने का बिम्ब अद्भुत है। कई ग़ज़लों में याद का यह समुन्दर कुछ इस तरह लहरा रहा है जैसे कि अब नहीं तो तब तूफ़ान आने ही वाला हो। पर आता कभी नहीं। लहरें उसे कुछ इस तरह समेट कर फैलाती हैं कि हम अपने आप को फिर एक जाने-पहचाने तट की ओर लौटते हुए पाते हैं, जिसे प्यार कहते हैं। बार-बार का यह लौटना ही मलका की शायरी वही की खूबसूरती और इंसानियत की फितरत है।

यह सही है कि वे अपने समय के कई जाने-पहचाने प्रगतिशील शायरों की तरह इतनी प्रगतिशील नहीं हैं कि फार्मूला बन जाएँ; पर इतनी रोमांटिक भी नहीं कि शायरी और काल्पनिकता में कोई फर्क ही न बचे। मलका के पास पुरानी बातों को नए ढंग से कहने के ढंग हैं और नई बातों को भी वे इस ढंग से बखानती हैं कि वे अपनी परम्परा के बेहद करीबी लगती हैं। इसलिए नए और पुराने की मुठभेड़ के बदले उनके यहाँ दोनों का सामंजस्य है। न पुराने का अनावश्यक अंगीकार, न नए का गैरज़रूरी निषेध। परम्परा खुद को शायद इसी तरह बार-बार रचती है। मलका इसे और इसके रचाव को बखूबी समझती हैं।

फिर भी उनकी शायरी अपने समय में और अपने लोगों में है। वे 'लोग' भी यहाँ हैं जो समय में तो हैं किन्तु लोगों के प्रति लापरवाह हैं। ऐसों की शायरी विचारों की शायरी है। वे अनुभवों की राह से गुज़रने वाले विचारों की अवमानना तो नहीं किया करते पर विचारों को इतना बेलगाम भी नहीं होने देते कि वे शायरी को ही पटकनी देने लगें।

शायरी को अपने समय में रहने के लिए अपनी नागरिकता विचारों के रजिस्टर में तो दर्ज़ करानी पड़ती है किन्तु यह काम कुछ-कुछ साइड-पार्टनर जैसा हुआ करता है। दुनिया की तमाम विद्याएँ ज्ञान के आतंक और दबदबे को लेकर खड़ी हैं। भावनाओं को शायद ही वहाँ कोई जगह मिल पाती हो। यह तो कविता या फिर कला मात्र की मजबूरी है या कि स्वभाव कि यहाँ विचार भावना की आगोश में सोए पड़े रहते हैं। दर्शन जब अपनी नीरस तर्क परायणता के कारण लोगों की विरक्ति का पात्र बन जाता है तब अपनी मदद के लिए वह भी इसी के पास चुपचाप चला आता है और शायरी है कि उसका बखूबी साथ देती है। उसको जगह-जगह से इस तरह भरती सजाती और

समृद्ध करती है कि वह अपने ठेठ और नीरस तर्कों की तपन और शुष्कता भूल ही जाती है। मलका की शायरी में इसके उदाहरण भी हैं–

शाम हुई मायूसी लेकर
कल की तरह वह लौट आया
कितना मुश्किल अब
इन भूखे बच्चों को बहलाना है
सर पे गृहस्थी की गठरी है
गोदी में है मुस्तकबिल
घर के ख़्वाब सजे
पलकों पर और फुटपाथ ठिकाना है

यथार्थ की यह धमक और उसकी भटकन के अंदेशे भी यहाँ खूब हैं –

हाथ में सभी के हैं शोहरतों के आईने
लग रही है यह दुनिया इश्तेहार का मौसम
इन्सान की निगाह सितारों पे है नसीम
गुम हो के रह न जाए कहीं आसमान में

और इस संदर्भ का यह आख़िरी उदाहरण–फिलसफाना–

पल में ढा देगी इसे सुबह की बस एक किरन
रात भर ख़्वाबों की दीवार उठाया न करो

शायरी का यह बेहद मार्मिक, घरेलू और पुरअसर अंदाज़ हमें एक ऐसे संसार में ले जाता है जो रोज़–रोज़ दूर से दूरतर होता जा रहा है। कम से कम अकेले में ही सही, शायरी हमें मजबूर कर डालती है कि हम जो होते जा रहे हैं, वह सुविधापूर्ण तो है पर सुखदायी तो कदापि नहीं। शायरी हमें चीज़ों और लोगों की कामकाजी और काम चलाऊ भीड़ से खींचकर वहाँ ले जाती है जहाँ हम न तो भीड़ के हिस्से होते हैं, न खुद एक भीड़। मलका की शायरी तो खासतौर से इस आग्रह को लेकर ही आती है–

क्या अलग से भी है अपना कोई नाम
भीड़ से बाहर निकल कर देखना

शायरी सिवाय इसके और है ही क्या? वह कभी भी किसी भी स्थिति में भीड़ की अफरा–तफरी या उन्माद नहीं है। वह हमेशा से एक ऐसी नायाब संवेदना है जिसे कोई समाज अपने सबसे प्रतिभाशाली सदस्य के मार्फत पा पाता है। मलका में अगर ये संवेदनाएँ हैं तो मानना पड़ेगा कि वे प्रतिभाशाली हैं और हमारे समय को उन पर गर्व है।

यह माना कि उनकी शायरी याद और अकेले हो जाने की शायरी है पर इस अकेलेपन के अनुभव को वे कई प्रकार से इस तरह भरती हैं कि उन्हें पढ़ते हुए किसी खालीपन का बोध हमें नहीं होता। कुछ लोगों का अकेलापन ऐसी ही होता है कि लोगों को शायद ही यह अन्दाज़ लग पाता हो कि वह है भी या नहीं। विपरीत इसके अपनी शायरी में वे जिन तमन्नाओं से घिरी हैं, उस अकेलेपन में भी आहटें उनके साथ हैं–

हम शहरे तमन्ना में इसे ढूँढ़ रहे हैं
आहट है कि तनहाई के जीने पे खड़ी है

'तनहाई' के साथ 'आहट' को पैबस्त कर मलका ने जिस नाज़ुक, ख़ामोश और जटिल बिम्ब को रचा है, वह अपनी चुप्पी के बावजूद बोलता हुआ सा लगता है। ऐसा लगता है संवेदनाओं की एक जानी पहचानी बस्ती हमारे चारों ओर न जाने कब से आकर बस गई है। यही बस्ती कभी 'आँसू' के कवि प्रसाद के यहाँ भी बसी थी–

बस गई एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र–लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में

शायरी ही क्यों, सभ्यता और संस्कृति के अनेकानेक पहलू इसी प्रकार समृद्ध और बहुरंगी होते आए हैं। इनके बगैर तो यह रोज़–रोज़ नई होती दुनिया भी सिर्फ वर्तमान के कंकाल भर बचेगी। शायरी जबकि वर्तमान की गुलामी नहीं है कोई अखबार नवीसी भी नहीं। उसमें सदियों के अनुभव हमारे अपने सपनों की आहटें लेकर धड़का करते हैं। यहाँ भी वह सब है। जो नहीं होने योग्य है। मलका उसे बदल डालने की पक्षधर हैं–

बदल भी डालो यह रस्मे–तकल्लुफात की बात
कभी तो आओ मेरे घर में अपने घर की तरह

इस बदलाव के लिए वे आँख मूँदकर एडवोकेसी करती हों, यह समझना भी उपयुक्त नहीं। बदलाव वही खूबसूरत है जो आदमी और उसकी सभ्यता को और अधिक खूबसूरत बनाए। नीचे वाले मिसरे में अपने घर की तरह 'मेरे घर आने' का जो संदेशा है, वह खूबसूरत है। जहाँ रोज़–रोज़ अजनबियत बढ़ रही हो, परायेपन के बीहड़ पनप रहे हों, वहाँ अपनत्व की यह माँग एक सामाजिक ही नहीं ऐतिहासिक आकांक्षा भी है। उनकी शायरी में ऐसी भी जगहें हैं जहाँ तथाकथित आधुनिक सभ्यता और सभ्यता में काफी विवाद है। कविता कभी भी तथाकथित विश्वासों या मूल्यों की विरासत नहीं रही। उसकी निगाह हमेशा ही उन मानव–मूल्यों पर रही आई है, जो मनुष्य और उसके समस्त जीवन–व्यापार को मानवीय बनाते हैं। मलका की शायरी का भी यही अंदाज़ है।

उन्हें पढ़ते हुए जो बात बार–बार मुझे उनकी ओर खींचती रही वह हिन्दी और उर्दू शायरी के संसारों को और पास–पास लाने वाली कोशिशें हैं। कई और शायर भी यह काम बखूबी करते रहे हैं मसलन बशीर बद्र और निदा फ़ाज़ली। निदा कुछ ज़्यादा ही।

गौरतलब है कि शास्त्रानुगामी या परंपरानुगामी रचनाकार प्रायः अपने समय की सोच, बोल–चाल और अभिव्यंजा–पद्धतियों का या फिर नए–नए मुहावरों का उपयोग और स्वागत नहीं ही कर पाते। उनमें परम्परा का डर बना ही रहता है। यही कारण है कि ऐसे कवि या शायर कभी भी उस दायरे को तोड़ नहीं पाते जिनसे कविता की राह ठहरी हुई होती है। प्रतिभा का पहला धर्म है कि वह अतिक्रमण करे। ठहराव में गति लाए। यह तभी संभव है जब वह कुछ घिस–पिट सी गई चीज़ों को बदले। उनकी जगह कुछ नए ढंग की सूझ, नए मुहावरे, नई कल्पनाएँ लेकर आए।

वे कवि भी बड़े होते हैं जो कविता की भाषा बदल पाते हैं। वे तो खैर बहुत ही बड़े होते हैं, जो उसकी परम्परागत सोच तक को नया करने की सामर्थ्य प्रदर्शित करते हैं। ग़ालिब ने कभी मीर का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी अपनी विशिष्टता का समझ–बूझ कर रेखांकित किया है–

रेख़्ते के तुम्हीं नहीं हो उस्ताद ग़ालिब
अगले ज़माने में कोई मीर भी था

रेख़ते की यह उस्तादी सिर्फ बयान की उस्तादी नहीं है, सोच की खूबसूरती की उस्तादी भी है। चीज़ों के उनके अनोखे अंदाज़ों में महसूस करना ही तो कवित्व है। ग़ालिब यह करके ही महान् हुए। आले अहमद सरूर ने ठीक ही लिखा है कि 'ग़ालिब एक संस्कृति की प्रौढ़ता के अन्तिम की स्मृति थे। सामन्ती सभ्यता की सज–धज के साथ उनके यहाँ जो असन्तोष है, वह उनके नएपन को प्रकट करता है। उर्दू ग़ज़ल

को उन्होंने सतही भावुकता और ओछे शब्दजाल से मुक्त करके गहराई और रंगीनी प्रदान की। ग़ालिब की कविता में मानव और साहित्य प्रथम बार बिना सहारे के अपनी महानता के बल पर खड़े आते हैं।' इस प्रकार की महानता तो कभी कभी ही नज़र आती है। किन्तु ऐसे भी शायर होते आए हैं जो कुछ और नए दृश्यों को लेकर आते हैं और जानी-पहचानी सी बातों को अपने ताज़े बिम्बों से नया कर डालते हैं। मलका की शायरी में यह अतिक्रमण हमें बार-बार महसूस होता है। वे गुलो-बुलबुल, कफ़स-सैय्याद, शमाँ-परवाना की पुरानी दुनियाओं को दुहरातीं नहीं, उन्हें एक नया अन्दाज़ देती हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण यह कि वे उर्दू शायरी की कल्पनाशीलता के संसार में विचरण करती हुई जब-तब उस इलाके में आकर ठहर जाती हैं जिसे हम हिन्दी कविता का अंदाज़ कहते आए हैं-

मैं सूखी डाल हूँ, लेकिन तुम्हारी यादों के
परिन्दे आकर सरे-शाम बैठ जाते हैं

कम हुआ अज़्मे सफ़र जब भी गमों की धूप में
उसकी यादों के घने बादल ने साया कर दिया

मौसम है बहारों का मगर ख़ानए दिल में
सूखे हुए एक पेड़ की तसवीर लगी है

दिल के वीराने में सरसब्ज़ है यादों का शजर
गरमियों में भी हरा रहता है पीपल जैसे

जैसा कल सोचते थे आज भी वैसा सोचें
फ़िक्रे इन्साँ यह बन्दिश हो ज़रूरी तो नहीं

उर्दू शायरी का यह खड़ी बोली करण है यह खड़ी बोली का उर्दू के साथ संयोग बिठा उसमें मिठास घोलने की कोशिश, कहना कठिन है। फिर भी इससे भाषाएँ और कल्पनाएँ ही नज़दीक नहीं आतीं, हमारे दिलों की रोज़-रोज़ बढ़ती दूरियाँ भी कम होती हैं। हमारे सोच के तौर तरीकों के करीब आने पर हमारे व्यवहारों और सोच का संसार भी करीब आता है। कहीं न कहीं हम बुनियादी तौर पर गहरी आत्मीयता और एकता का अनुभव कर पाते हैं। शायरी का इतिहास गवाह है कि उसने अब तक यही किया भी है। मलका नसीम भी इसी इतिहास में अपनी खूबसूरत रचनात्मक उपस्थिति का एक अध्याय जोड़ रही है।

❐❐❐

29, निराला नगर, भोपाल, 462003, मप्र
मोबाइल 9425030392

मलका नसीम की ग़ज़लें

झुलसती धूप में तन्हा किसी शजर की तरह
निगाह ठहरी है सुनसान रहगुज़र की तरह
न मिल सका वह कभी ख़्वाब के जज़ीरों में
गुज़र गई है हर एक शब मेरी सहर की तरह
वह कौन शै थी जिसे आज देखने के लिये
तेरी नज़र भी उठी थी मेरी नज़र की तरह
बदल भी डालो यह रस्मे तकल्लुफ़ात की बात
कभी तो आओ मेरे घर में अपने घर की तरह
''नसीम'' उभरेगी कब ख़्वाब है के जज़ीरों से
किस उम्मीद की उजली सी एक सहर की तरह

0000

सुलगती शाम की दहलीज़ पे जलता दिया रखना
हमारी याद का ख़्वाबों से अपने सिलसिला रखना
सदा बनकर, घटा बनकर, फ़ज़ा बनकर, सबा बनकर
न जाने कब मैं आ जाऊँ दरीचा तुम खुला रखना
इन्ही राहों से लौटूँगी न आऊँ यह भी मुमकिन है
मगर तुम रेत पर महफ़ूज़ अपने नक़्शे पा रखना
मेरे ख़्वाबों की ताबीरों से वाबस्ता रहे हो तुम
मेरी यादों का अपने रोज़ो शब से सिलसिला रखना
न पढ़ ले कोई तहरीरें तुम्हारे ज़र्द चेहरे की
दरो दीवार घर के शोख़ रंगों से सजा रखना

0000

ख़ुशबूओं की रुत उजालों की क़बा अच्छी लगी
उसकी यादों से जो महकी वह फ़िज़ा अच्छी लगी
शाख़े गुल थी साया-साया चाँदनी थी हम किनार
इन हसीं लम्हों ने जो माँगी दुआ, अच्छी लगी
इसकी यादों से सजी थी जागती आँखों की सेज
अश्के ख़ूँ से नम हथेली पर हिना अच्छी लगी
मैं थी तन्हाई का सेहरा वह समन्दर का सुकूत
छू के आई थी जो उसकी वह सदा अच्छी लगी

0000

हवाएँ कर रही हैं आज फिर सरगोशियाँ मुझसे
ये क्या ले जाएँगी फिर छीन कर तन्हाइयाँ मुझसे
अभी वापस हुए हैं तल्ख़ियाँ पीकर ज़माने की
शिकायत कर रही हैं घर की ज़िम्मेदारियाँ मुझसे
बता कैसे कहूँ रूदादे ग़म ऐ पूछने वाले
कि तूने छीन लीं अल्फ़ाज़ की बैसाखियाँ मुझसे
पढ़ी लिक्खी हो फिर ये मशरिक़ी तहज़ीब क्या मानी
यह अक्सर पूछती हैं ऊँचे घर की बीबियाँ मुझसे
''नसीम'' इन जागती रातों में याद आती हैं रह रहकर
भुलाई जाएँ कैसे अपनी माँ की लोरियाँ मुझसे

0000

3543, बारियों की गली, मोती कटला बाज़ारा, जयपुर, राजस्थान 302002
मोबाइल 9828016152

कुछ नज़्में

राजेश मिश्रा

एक नज़्म है, छुटकी सी

जो कभी नसेनी लगाकर
चाँद के मुँह पर गुलाल लगा आती है
तो रही
चाँद के संग गफ़्तगू सी आती है
ग़ज़ब है वो छुटकी सी नज़्म

जब वो कागज़ पर बैठती है
तो कहीं ग़ज़ल बनती है कहीं गीत
मैंने पूछा इक रोज़
कि तुम इतनी ख़ूबसूरत क्यों लगती हो,
तो मुस्कुरा कर कहती है,
मैं तो अपनी रूह उतार देती हूँ कागज़ पर
ख़ुद ब ख़ुद बन जाती है
गीत और ग़ज़ल मेरी रूह
बहुत रूहानी है वो छुटकी सी नज़्म

उसकी आँखों में कई परिंदे क़ैद हैं
मैंने देखा है, वो उतार देती है
उन परिंदों को भी कागज़ पर।
ऐसा लगता है मानों वे परिंदे
उस नज़्म से बातें कर रहे हों
जादूगरी आँखों वाली है वो छुटकी सी नज़्म

बड़ी मिठास है उसकी आवाज़ में
जब वो गाती है तो बस...
लगता है क़िमाम वाला बनारसी पान
मुँह में रखा और घुल गया।
साँसों की गहराई के साथ
और मीठी होती जाती है
बड़ी मीठी-सी है वो छुटकी सी नज़्म

जब भी पढ़ना उस नज़्म को
की बस यूँ ही मत पढ़ना
पढ़ना उसकी रूह को आवाज़ को
और पढ़ना उसकी आँखों को
कभी खुली आँखों से मत पढ़ना
अगर तुम महसूस कर सकते हो
उस रूह को,
तभी तुम पढ़ सकते हो वो नज़्म
बड़ी ख़ूबसूरत है, वो इक छुटकी सी नज़्म
0000

अच्छे दिन

मेरे अच्छे दिन....
मैं छोड़ आया हूँ अपने गाँव में,
.... वो मिट्टी का बना घर
जिसकी दीवारें मुझे भर देती थी
अपनी ख़ुशबू से।

उसी घर के एक कमरे में,
मैं छोड़ आया हूँ, लकड़ी का बक्सा
उसी बक्स में वो पाँच रुपये का नोट भी है,
जो दादी ने मेले के लिए दिया था
मेरी बड़ी माँ ते अब रही नहीं
पर उनके पेट पर घुड़सवारी की यादें
उसी कमरे के साथ आती हैं।

वहीं पर एक मिट्टी के बर्तन में
रखे है, टेसू के कुछ रंग,
जिन्हें देखकर नशा-सा भर जाता था
जामुन और आम की डालियाँ
बुलाती रहती थीं खेलने के लिए।
उस घर से बहुत से रिश्ते बने थे
बुआ, मौसी, चाची, भाभी.... सभी।
वे सब अच्छे दिनों की याद हैं।

अबकी बारिश में वो घर नहीं रहा
मेरे अच्छे दिनों की यादें भी बह गईं
उसी मिट्टी के साथ.....
और बह गए
कुछ रिश्ते और कुछ यादें,
वो मिट्टी मुझे हमेशा बुलाती है
मुझे भी मिलना है एक दिन उसी मिट्टी में।
0000

मैं और मेरी छोटी बहन

मैं और मेरी छोटी बहन
कितना अंतर है हममें
उसने जबसे माँ का दूध छोड़ा,
बस दूध देखा ही है।
उसके हिस्से में पारले-जी और चाय
मेरे हिस्से में दूध-बादाम था।
ये मेरा विशेषाधिकार था।.....

मैं बहुत अच्छे स्कूल में पढ़ा,
मुझे बड़ा जो बनना था,
माँ-बाप का नाम रोशन करना था
बुढ़ापे का सहारा बनना था।
उसे तो बस पास होना था
शादी के बाद दूसरे घर ही तो जाना था
नंबर हमेशा उसके अच्छे आते रहे
तारीफ मुझे मिलती रही
ये मेरा विशेषाधिकार था।.....

घर के सब काम वो करती
मैं बस विशेषाधिकार का लाभ लेता
बचपन से ही उसने सीख लिया सब
चाय से लेकर खाना बनाने तक
मुझे आज तक खाने का सहूर भी न आया।
ये भी मेरा विशेषाधिकार था।.....

उसने हमेशा सूखी रोटी ही खाई
उसे मालूम था घी की ज़रूरत मुझे है

उसके सामने ही मैं बैठता था,
घी वाली रोटी लेकर
ये मेरा विशेषाधिकार था।.....

दुनिया के सारे बंधन थे उसके लिए
मैं तो आज़ाद पंछी था
फिर भी मैं ज़िन्दगी के हर मोड़ पर
पीछे ही रहा उससे
बस एक बात को छोड़कर
कि इतनी नालायकी के बाद भी
मेरे पिता की पूरी सम्पत्ति मेरी है।
0000

नन्हीं-सी नज़्म

दरिया के किनारे बैठा,
घंटों बातें करता हूँ अपनी नज़्मों से।
एक दिन, एक नन्हीं-सी नज़्म ने पूछा,
शायर,
कब तक पकड़े रहोगे मुझे
तुम छोड़ ही दोगे मुझे एक दिन,
अनजान लोगों के बीच
और कसकर पकड़ ली मैंने वो नज़्म...
जब भी बेटी को बढ़ते देखा है,
याद आ जाती है वो नन्हीं-सी नज़्म
कसकर पकड़ने की कोशिश करता हूँ
उस नन्हीं-सी नज़्म को।
0000

ज़िद्दी रंग

अबकी बारिश ने
उभारे हैं कई रंग घर की दीवारों पे,
कुछ तस्वीरें भी निकल आई हैं,
चेहरा तो तुम्हारा है,
पर रंग कुछ हल्के हैं।
छत की सीलन के बीच से
एक ख़ुशबू-सी निकलती है,
जो तुम्हारे होने का एहसास दिलाती है।
बहुत कोशिश की रंग चढ़ाने की
इन दीवारों पर,
रंग हैं कि मानते नहीं,
ज़िद्दी हैं ये भी तुम्हारी तरह,
शायद मानेंगे नहीं।
0000

डी-14, 74 बँगले, भोपाल
मोबाइल : 9425093140

दो कविताएँ

रोज़लीन

535, गली नं. 7, कर्ण बिहार, मेरठ रोड,
करनाल-132001 (हरियाणा) भारत
मो. 09467011918

साक्षी

गहरे अंधकार में
तुम सुबह बनकर आती हो
खड़ी निहारती हो एक पल
पलकों पर गिराती हो
उजाले की नर्म बूँदें
जगाती हो
एक आलस भरी नींद से
और मेरा हाथ पकड़
फलाँग जाती हो
खिड़कियों से बाहर
करती हो इंगित -
ताबड़-तोड़ बरसते
निचुड़ते, बिछते
सुरभित अंबर की ओर
जो छोड़ता है....
अपनी साँस-साँस
अपनी आद्रता
अपना स्पर्श
अपना अगाध प्रेम
धरती के रोम-छिद्रों में
भीतर-भीतर

जी भर अमृत पीकर
आँखें मूँद
धरा होती है तृप्त
- सँजोकर स्पर्श आकाश का,
अब-
इतने ही समर्पण से
बरसेगी धरती
कल
आसमान पर और,
फिर कुछ सहेजेगा आसमान

एक टीस
एक लंबे दुराव के बाद
आज धरती की प्यास बुझ रही है
देखो कैसे पुलकित है 'साक्षी'
प्रेम भरे नज़ारों में।
0000

सफेद दाढ़ी वाला आकाश

आजकल
हवा, मिट्टी
दरवाज़ों, खिड़कियों के सीखचों से
फँस-फँस कर
सीलन भरी दीवारों की दरारों से
घुस आती है मुझ तक
जैसे प्रकाश आता है
तुड़ा-मुड़ा

आकाश झाँकता है
रोशनदान से
उतर आता है यहाँ
इतमिनान से बैठ मेरे सन्निकट
खोलता है गठरी
- एक सोने के कटोरे से
चाँद - तारों के समूह
उँडेल देता है यकायक,
बादलों के झाग दिखाने
खुलवाता है मेरी बंद आँखें-
- एक सागर में तैर जाती है
मेरी छोटी सी लाईब्रेरी,
झाग, बुलबुले
बारिश, लहरें
चाँद-तारों की ठंडी गंध में
खेलती हूँ मैं

अपनी सजल आँखों से
निहारता - दुलारता
वो सफेद दाढ़ी वाला आकाश
रख देता है अपनी गीली उँगलियाँ
मेरी पलकों पर,
एक सुकून में छोड़
लौट जाता है वो
फिर-
उसी रोशनदान से
बिना यह बताए
कि अब
वो फिर कब लौटेगा।
0000

कहानी

सेंसलेस

महेश शर्मा

कुछ देर यूँ ही निरुद्देश्य घूमते हुए 'संगम' में 'तर्पण' के पोस्टर देखने के बाद ठीक पौने छ: बजे मैं मोतीबाग क्रॉसिंग पर पहुँच गया। वह बस पौने छ: से छ: के बीच वहाँ से गुज़रती है। अलग-अलग रूट नम्बर वाली ब्ल्यू लाइन सामने से गुज़र रहीं थीं किन्तु मुझे इंतज़ार था रोहिणी जाने वाली चार्टर्ड बस 'डी एल-1 पी 4962' का। कल उसी बस में तो मैं बेचैन कर देने वाले अनुभव से गुज़रा था। उसी बेचैनी का नतीजा है कि आज फिर मैं यहाँ हूँ।

अब यह तो स्पष्ट है कि मैं कल भी यहाँ आया था लेकिन मैं यह बता दूँ कि कल मैं किसी काम से यहाँ आया था। काम खत्म करने के बाद ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस बस स्टॉप पर खड़े हुए काफी देर हो गई थी कल। एक-एक कर ठसाठस भरी हुई 'ब्ल्यू लाईन' गुज़र रही थीं, आज की ही तरह लेकिन मेरा साहस जवाब दे चुका था। बस के फुटबोर्ड पर पच्चीस-पच्चीस आदमी लटके हों तो बस में कैसे घुसा जा सकता है ? हालाँकि महानगरीय जीवन से अनभ्यस्त होने के कारण मेरे लिए यह एक जटिल प्रश्न था लेकिन राजधानी के बाशिंदे प्रतिदिन यह जौहर दिखाया करते थे। खैर....प्रश्न मेरे चूकते हुए साहस का था इसलिए मैंने तय किया कि चार्टर्ड बस में सफ़र किया जाए। मैंने सोचा तो उर्दू के 'सफ़र' के बारे में लेकिन क्या मालूम था कि ये अंग्रेज़ी का 'सफर' बन जाएगा। हालाँकि मन में विचार आया कि बीस रुपये लग जाएँगे जबकि ब्ल्यू लाईन में तो आधे में काम हो जाएगा, वैसे आधे भी कहाँ ? ठसाठस भरी बस में कंडक्टर को कह दो कि धौला कुआँ या नारायणा जाना है तो पाँच रुपए में ही काम हो जाता, आख़िर वह कहाँ तक हमारी शक्ल देखेगा। बहरहाल नफ़ा-नुकसान का गणित लगाते हुए मैं रोहिणी जाने वाली चार्टर्ड बस में बैठ ही गया। माफ कीजिएगा अभी मैं बैठा नहीं, बैठूँगा तो तब जब सीट मिलेगी। इसलिए कहना चाहिए कि बस में चढ़ गया। बस में चढ़ने के बाद मैंने नज़रें घुमाईं, तो कोई सीट खाली नज़र नहीं आई। 'चार्टर्ड' में भी यह हाल है कि खड़े-खड़े ही यात्रा करनी पड़ती है हालाँकि इसमें खड़े रहने पर भी संतोष मिलता है। ब्ल्यू लाईन में तो साँस लेने भर के लिए भी हवा उपलब्ध नहीं हो पाती है। फिर वहाँ की तरह पसीने से चिपचिप करते बदनों से सटकर तो नहीं खड़े रहना पड़ता यहाँ, बल्कि यहाँ तो पढ़े-लिखे 'सर्विस क्लास' लोगों का साथ मिलता है। सच पूछो तो चार्टर्ड बस में चढ़ते ही मैं अभिजात बोध से भर उठा। मुझे गर्व की अनुभूति होने लगी और सीट न मिलने का ग़म, ग़म न रहा। मैं एक सीट का सहारा ले खड़ा हो गया। भीकाजी कामा पैलेस पहुँचते-पहुँचते पास की सीट पर से एक सज्जन उठते दिखाई दिए तो मैं वहाँ स्थान लेने पहुँच गया। मैंने देखा तीन लोगों के लिए तय सीट पर दो लड़कियाँ बैठी हैं जो मुझे बेचैन कर देने वाले अनुभव का सबब बनने जा रही थीं। मैं खाली सीट पर बैठ गया। 'चार्टर्ड' बस में बैठने की अनुभूति को हौले-हौले महसूस करता हुआ मैं अपने में सिकुड़कर बैठा, जिससे पास बैठी लड़की को मेरी छुअन महसूस न हो। कहीं ऐसा न हो कि मेरा शरीर उसके शरीर से छू जाए, तो वह ये सोचने लगे कि मैं जानकर ही स्पर्श सुख लेना चाहता हूँ। शायद मेरा अनुमान ग़लत भी नहीं था क्योंकि वह भी अपने में सिमटी। उसी स्टॉप से अधेड़ उम्र के एक सज्जन बस में चढ़े किन्तु सीट न मिल पाने पर समीप ही खड़े हो गए। जैसा कि मैंने बताया मैं अभी महानगरीय जीवन का पूरी तरह अभ्यस्त नहीं हो सका हूँ, इसलिए मुझे उन सज्जन के चेहरे पर थकान स्पष्ट दिखाई दी और मेरे मन में विचार आया कि इन्हें भी सीट पर बैठा लिया जाए। तीन लोगों के लिए निर्धारित सीट पर चौथे व्यक्ति को बैठाने के लिए सभी को थोड़ा-थोड़ा खिसकना पड़ता। इस प्रक्रिया में एक-दूसरे से सटकर बैठना पड़ता और संभवत: पास में बैठी लड़कियाँ इसे पसन्द न करतीं। हो सकता था कि वे इसे सटकर बैठने के लिए मेरे द्वारा किया गया षड्यंत्र समझ बैठतीं। निश्चित रूप से वे मुझे 'बेशर्म' कहतीं.... ये विचार आते ही मैंने उन सज्जन को सीट पर बैठाने का ख़्याल छोड़ दिया। अब मुझमें इतनी हिम्मत भी नहीं थी कि मैं उन्हें सीट देते हुए स्वयं खड़ा हो जाता। बैठे-बैठे ही मन में नई विचार श्रृंखला शुरु हो गई...ये सज्जन अपरिचित हैं इसलिए इन्हें सीट पर बैठाने का विचार शायद इन लड़कियों को अनावश्यक लगे। भला सिकुड़कर बैठना वे क्यों पसंद करें...लेकिन यदि इन लड़कियों का ही कोई परिचित आ जाए तब...परिचित को जगह देने के लिए तो वे खिसककर जगह बना लेंगी....। मेरी विचार श्रृंखला तब टूटी जब सीट के पास आ खड़े एक युवक ने लड़कियों से हाय-हैलो का आदान-प्रदान किया। तभी पास बैठी लड़की ने विनम्रता से मुस्कुराते हुए मुझसे उस युवक के लिए थोड़ी-सी जगह बनाने को कहा। कोने पर खिसक कर मैंने उस युवक को बीच में घुसने दिया और अपनी मूर्खता पर स्वयं मुस्कुरा उठा। आख़िर क्यों मैंने अधेड़ उम्र के अंकल को 'सीट शेयर' करने का नहीं कहा। तब तक बस धौला कुआँ से आगे निकल चुकी थी। दोबारा श्रृंखला बनाने की कोशिश में विचारों ने नया मोड़ लिया....यदि इस युवक के स्थान पर मैं होता और इस युवक तथा उसके पास बैठी लड़की से थोड़ी-सी जगह माँगता तो निश्चित ही वे तिरस्कारपूर्ण नज़रों से घूरते हुए इनकार कर देते। वैसे

मैं इनसे जगह माँगता ही क्यों ? एक तो पहले ही संकोची स्वभाव और फिर मन में यह भाव कि क्यों किसी को तकलीफ दें, न तो वह ठीक से बैठ सके और न ही हम स्वयं। विचार तीव्र गति से दौड़ रहे थे...नहीं-नहीं, यदि संकोच तोड़ मैं जगह चाहता ही तो ? तब शायद ये मुझे लम्पट, असभ्य और बेशर्म समझते। उनकी नज़रें कहने लगती...हाउ डेयर यू ? ये सोचते-सोचते मानों मेरे कानों में उनकी आवाज़ गूँजने लगी... हाउ शेमलेस ही इज़।

हँस-हँस कर बातें कर रहे युवक-युवती की निगाहें रह-रहकर मेरी ओर उठ रही थीं। निश्चित ही वे यह सोच रहे होंगे कि मैं कब सीट छोड़कर उठ जाऊँ। उन्हें क्या मालूम कि मुझे तो आख़िरी स्टॉप 'रोहिणी' तक ही जाना है। ...ये मेरी ओर देख कर अर्थपूर्ण ढंग से मुस्करा क्यूँ रहे हैं..ऐसा विचार आते ही मैंने अपने कपड़ों की ओर देखा। हो सकता है जींस-टी शर्ट के स्थान पर साधारण पेंट-शर्ट देखकर मैं उन्हें पिछड़े इलाके वाला नज़र आ रहा हूँ.... मैंने अपने पैरों की ओर निगाहें घुमाई...बारिश में भीगने के कारण सूखने रखे जूते के स्थान पर मैंने चप्पल पहनी हैं, जो आम तौर पर महानगरीय लोग नहीं पहनते हैं...हालाँकि ये तो 'बाटा' की है लेकिन हमारे इलाके के गाँव के लोग तो 'स्लीपर' ही पहनते हैं...। फिर इतने उमस वाले मौसम में पसीने से चिपचिप करते मोजे मेरे लिए तो असुविधाजनक ही होते हैं....तभी मेरी निगाह हाथ में बँधी राखी पर पड़ी.. ओह, अब समझा... शायद रक्षाबंधन के दस दिन बाद भी कलाई पर राखी बँधी देखकर ही वे मुस्कुरा रहे हैं....उन्हें क्या मालूम कि डाक विभाग की कृपा से एक पखवाड़े पहले बहन द्वारा भेजी गई राखी मुझे कल ही मिली। वैसे हमारे इलाके में तो जन्माष्टमी तक रक्षा का ये सूत्र खोला ही नहीं जाता बल्कि कई क्षेत्रों में जन्माष्टमी पर ही रक्षाबन्धन का रिवाज है। इनकी उपहासात्मक मुस्कान निश्चित रूप से मेरा अनुमान सही ठहरा रही है...और भला क्या बात हो सकती है ? मुझे कॉलेज में साथ में पड़ने वाले 'लोकलाइट' दोस्त प्रशांत की याद आई जब उसने राखी पर बहन द्वारा बाँधा धागा एक घण्टे बाद ही निकाल दिया था। तब उसने बताया था कि उनके पड़ोस में एक लड़की उस लड़के से प्रेगनेंट हो गई जिसे वह राखी बाँधा करती थी.....मेरी टीस बढ़ने लगी।

आप समझ सकते हैं कि अधेड़ सज्जन को सीट पर न बैठा पाने का दर्द युवक द्वारा सीट शेयर करने पर उभर गया और फिर लड़का-लड़की की कुटिल मुस्कान तथा उन्मुक्त हँसी पर मेरे अनुमान, जो कि प्राय: सटीक ही होते हैं, से बहुत बढ़ गया। इस तरह बढ़ता हुआ दर्द ही वह अनुभव बनने जा रहा था जिसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ और जिसे जानने को आप उत्सुक हैं। उनकी हँसी मेरे लिए असहनीय होते जा रही थी और मैं निश्चय कर रहा था कि भले ही पिछड़ा दिखूँ लेकिन यह राखी तो मैं अब एक सप्ताह से पहले नहीं निकालूँगा। मैं नज़रें घूमाकर खाली सीट तलाशने लगा क्योंकि पंजाबी बाग़ आ गया था और कई यात्री बस में से उतर चुके थे लेकिन कोई सीट खाली नहीं दिखी क्योंकि बस में खड़े लोग उन पर बैठ चुके थे। अब विचारों ने मुझे फिर सताना शुरू किया ...मैं ही क्यों अन्य सीट पर जाकर बैठूँ। इस युवक ने ही मेरी सीट पर अतिक्रमण किया है तो इसे ही खाली सीट तलाश करनी चाहिए।....पर मुझे इस सीट से कहाँ लगाव है इसलिए मैं ही उठ जाऊँगा तो क्या फर्क पड़ेगा.....ये तो मेरी सदाशयता है कि मैं ऐसा सोचता हूँ परन्तु इस युवक को भी तो ऐसा सोचना चाहिए कि खाली सीट मिलने पर वह उस पर जा बैठे...यदि खाली सीट देखकर युवक स्वयं न जाए और मुझे वहाँ जाने को कहे तो ? ....नहीं-नहीं उसे मुझसे मेरी सीट छोड़ने का कहने को क्या हक ? ये तो मेरी मर्ज़ी है कि मैं स्वयं उनकी और अपनी परेशानी को महसूस करते हुए अन्य पर बैठूँ या न बैठूँ...लेकिन मैं इनकार कर दूँ तो असभ्य कहा जाऊँगा..यह समझा जाएगा कि लड़कियों के पास बैठने का मोह ही मुझसे इनकार करवा रहा है। तभी युवक ने विचारों की शृंखला भंग करते हुए एक खाली सीट की ओर इशारा किया और मुझे वहाँ बैठने को कहा। मैं पुन: अपने अनुमान की सटीकता पर मुस्कुराता हुआ दूसरी सीट पर जा बैठा। मेरे मस्तिष्क में झंझावत चलने लगा। उस युवक को क्या अधिकार था मुझे निर्देश देने का...मुझे वहाँ से उठना था कि नहीं...यदि मैं उसकी जगह होता तो मुझे तो बैठने भी नहीं दिया जाता....बेचैनी बहुत बढ़ गई। मैंने तय किया कि मनोविज्ञान में एम.ए. कर रहे अपने रूम पार्टनर संजय से इस विषय में बात करूँगा। रोहिणी पर बस से उतर कर मैं कमरे में पहुँचा तो संजय वहाँ नहीं था। उसके इंतज़ार में एक घण्टा बमुश्किल कटा और संजय के आते ही मैंने सम्पूर्ण घटना उसे बताई लेकिन वह मुस्कुरा कर बोला 'तुम सोचते बहुत हो'। मुझे बेचैन कर देने वाले सम्पूर्ण घटनाक्रम को उसने एक टिप्पणी से ज़्यादा लायक नहीं समझा। मेरी बेचैनी और बढ़ गई तथा मैंने तय कर लिया कि अगले दिन मैं इस बात की सत्यता की जाँच करूँगा कि उस युवक की जगह मैं होता और उनसे मैं थोड़ी जगह चाहता तो क्या वे जगह देते ? इसीलिए आज मैं यहाँ हूँ। सोचा कि मेडिकल से बस खाली न मिल जाए इसलिए मोती बाग क्रॉसिंग पर आया। फिर वह लड़का भी शायद भीकाजी कामा पैलेस स्टॉप से ही चढ़ा था, इसलिए सीट खाली हो तो वह वहाँ बैठ जाए, तब ही मैं बैठने की जगह मागूँगा। छ: बजकर पाँच मिनट हो गए थे, तभी सामने से डीएल-1पी 4962 आती दिखाई दी। जैसे ही बस रुकी मैं लपककर बस में चढ़ा। नज़रें घुमाई तो सामने सीट पर दोनों लड़कियों के साथ युवक बैठा दिखाई दिया- कल की ही तरह हँसते-मुस्कुराते हुए। यद्यपि मैं थोड़ी जगह माँगने का पूर्वाभ्यास कर चुका था, फिर भी दिल की धड़कन तेज़ गति से चलने लगी। मैं उनकी ओर बढ़ा तो मानों वज्रपात-सा हुआ क्योंकि उनके पीछे की सीट पूरी तरह खाली थी। स्तब्ध हो मैं खड़ा ही था कि याद आया आज तो शनिवार है। सभी सरकारी कार्यालयों में अवकाश होगा और बैठे हुए यात्री संभवत: निजी कंपनियों में काम करते होंगे। अपने को ठगाया महसूस करता हुआ मैं एक खाली सीट पर बैठ गया क्योंकि युवक-युवती से बैठने का स्थान माँगते हुए मैं 'शेमलेस' ही नहीं 'सेंसलेस' भी कहलाता।

❑❑❑

28 क्षपणक मार्ग फ्रीगंज उज्जैन(मप्र)
मोबाइल
09425195858,09826064983

आरोपित विस्मरण के विरुद्ध स्मृतियों का जीवनराग

राकेश बिहारी

संदर्भ: तरुण भटनागर की कहानी 'दादी, मुल्तान और टच एंड गो'

स्त्री दुनिया की सबसे पहली और बड़ी विस्थापित प्रजाति है। विस्थापन का दर्द आजन्म उसके वजूद का हिस्सा होता है। स्त्रियों की हर छोटी-बड़ी उदासी, उनका सुख-दु:ख, उमंग-उत्साह, नेह-छोह कहीं न कहीं जड़ों से उनके गहरे जुड़ाव को रेखांकित करते हैं। उन्हें उनकी जड़ों से अलग करने की एक सुनियोजित कोशिश भी समय और समाज के हर मोर्चे पर होती रही है। नतीजतन लोक में प्रचलित पर्व-त्योहार हों कि रस्म-रिवाज,उनके यादों मे बसी मायके की गलियाँ हों या ससुराल की दहलीज़ें, पोते-पोतियों से भरा-पूरा उनका घर हो या फिर अकेलेपन से जूझते हुये सन्नाटों के शोर से गूँजता उनके जीवन का उत्तरार्ध, अपनी जड़ों से बेदखल किए जाने का दंश उनके मन-प्राण का जैसे स्थाई हिस्सा होता है। सच पूछिए तो स्त्रियों का जीवन विस्थापनों की एक लंबी शृंखला होती है। माता-पिता के घर से विस्थापन, पति के घर से विस्थापन, बेटों के घर से विस्थापन... स्त्रियों के जीवन में घटित होनेवाले विस्थापनों का यह सिलसिला अमूमन उनके दुनिया से विस्थापित होने तक यूँ ही अनवरत चलता रहता है। विस्थापन का दर्द तो यूँ ही बहुत मारक होता है ऊपर से उसके साथ किसी तरह की लड़ाई या हिंसा की घटना भी जुड़ जाए तो तकलीफ कई गुणा बढ़ कर पीढ़ियों तक संवहित होती चली जाती है।

सुपरिचित कथाकार तरुण भटनागर की कहानी दादी, मुल्तान और टच एण्ड गो स्त्रियों के विस्थापन के उसी शाश्वत संदर्भ को एक बेधक संवेदनशीलता के साथ उकेरती है। चूंकि इस विस्थापन की पृष्ठभूमि में यहाँ भारत-पाक विभाजन की घटना है, इसका महत्त्व दुहरा हो जाता है।

किसी खास भूखंड से उखड़ने या कि उखाड़ दिए जाने के बाद स्त्रियाँ जिस नए भूखंड की निवासी बनती हैं, उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिहाज से उस नई जगह को भी वे उतना ही अपना मानती हैं जितना कि पहली जगह को। लेकिन अपना होने का यह भावबोध स्त्रियों के मामले में हमेशा ही एकतरफा होता है। परिणामत: दूसरा पक्ष बिना उस अपनेपन की परवाह किए स्त्रियों के लिए एक और नए विस्थापन के मार्ग का सतत निर्माण करता रहता है। स्त्री-विस्थापन की इस पीड़ा को प्रस्तुत कहानी की दादी कुछ इस तरह अभिव्यक्त करती हैं – ''औरत को हर छत छोड़नी पड़ती है। ऐसी हर छत जिसे वह अपना कह देती है। ऐसी हर छत, जिसे अपना कहने का उसका मन करता है। या वह हँसकर या रोकर उसे अपना कह देती है। दादी रुआँसी होकर कहती कि यह औरत का दुस्साहस है, कि फिर भी वह किसी शहर या घर को अपना कहती है।'' अपनी ज़मीन से बार-बार बेदखल किए जाने के बावजूद हर नई ज़मीन को अपना कह कर अपनाने का जो दुस्साहस स्त्रियाँ करती रही हैं, वह पितृसत्ता को हमेशा से प्रीतिकर रहा है। लेकिन स्त्री मन की पीड़ा और पितृसत्ता की इस सहज व्यवस्था के बीच द्वंद्व का कारण यह है कि स्त्रियाँ ज़मीन पर कर दी गई उस बेदखली को कभी अपने मन के भूगोल पर स्वीकार नहीं कर पातीं। नई ज़मीन को अपनाने का अर्थ उनके लिए पुराने ज़मीन का विस्मरण नहीं होता। बल्कि इसके विपरीत पितृसत्ता यह चाहती है कि वह हर विस्थापन के साथ न सिर्फ नई ज़मीन को अपना समझ कर उसकी सेवा-सुश्रुषा करे बल्कि खुद को पिछली ज़मीन की बेदखली के दंश की स्मृतियों तक से भी मुक्त कर ले, भावना और संवेदना के स्तर पर भी। विस्थापन के दंश के बहाने अपनी तमाम स्मृतियों और परम्पराओं को सँजोये रखने की स्त्रीसुलभ संवेदना और हर ज़मीन से बेदखल कर स्त्रियों को उनकी जड़ों और स्मृतियों तक से मुक्त कर देने के पितृसत्तात्मक नियोजन की अभिसंधि पर ही इस कहानी की संवेदनाएँ साँसें लेती हैं। स्त्रियों को पहले उसकी ज़मीन से और फिर उसके स्मृतिबोध से बेदखल कर देना अपने असली अर्थों में भविष्य को इतिहास से मुक्त कर देने की एक चरणबद्ध कोशिश है, जो भूमंडलोत्तर समय की एक बड़ी अभिक्रिया- 'यूज़ एंड थ्रो' का सुनियोजित उपोत्पाद और इस व्यवस्था का गंतव्य दोनों ही है।

स्मृतियाँ वर्तमान का आधार और भविष्य की भूमिका होती हैं। अतीत और स्मृति से विलग वर्तमान क्षणभंगुर क्रियाओं का लोथड़ा भर होता है जो संचय के विरुद्ध उपभोग के आत्मघाती दर्शन की प्रस्तावना करता है। स्मृतियों की साँसों पर पहरा बिठाकर नव उदारवादी आर्थिक व्यवस्था हमें सर्जक होने से रोक कर सिर्फ और सिर्फ एक 'पोटैन्शियल कस्टमर' में तब्दील कर देना चाहती है। इस कहानी में दादी के द्वारा स्मृतियों को सहेजने की आद्योपांत अकुलाहट मनुष्य के सर्जक रूप को ग्राहक और उपभोक्ता में तब्दील कर दिए जाने की सुनियोजित प्रस्तावना का प्रतिरोध है।

जैसा कि ऊपर उल्लेखित है, इस कहानी की पृष्ठभूमि में विभाजन की त्रासदी है, अत: इसे पढ़ते हुये विभाजन पर लिखी गई कुछ यादगार कहानियों का स्मृति-पटल पर कौंधना स्वाभाविक है। कहने की ज़रूरत नहीं कि विभाजन स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय और उसके बाद देश में घटित होने वाले सबसे बड़े और लोमहर्षक विस्थापन का कारण है। इतनी बड़ी त्रासदी के बावजूद संख्या की दृष्टि से इस विषय-संदर्भ की बहुत ज़्यादा कहानियाँ हिन्दी में क्यों नहीं लिखी गईं या इस विषय पर उर्दू और पंजाबी में अपेक्षाकृत

ज़्यादा कहानियाँ क्यों मिलती हैं यह एक अलग शोध का विषय हो सकता है, लेकिन अपनी सघन संवेदना और विरल प्रभावोत्पादकता के कारण तरुण भटनागर की यह कहानी 'अमृतसर आ गया है' (भीष्म साहनी), 'मलबे का मालिक' (मोहन राकेश) तथा 'पानी और पुल' (महीप सिंह) जैसी बड़ी कहानियों की शृंखला की अगली कड़ी के रूप में शुमार किए जाने लायक है। गौर किया जाना चाहिए कि 'अमृतसर आ गया है' के कथानक का काल-संदर्भ जहाँ विभाजन के आसपास का ही है वहीं, 'मलबे का मालिक' तथा 'पानी और पुल' के कथानक का काल-संदर्भ विभाजन के क्रमशः साढ़े सात और चौदह साल के बाद का है। इसी क्रम में यह उल्लेख भी ज़रूरी है कि 'दादी, मुल्तान और टच एण्ड गो का' कथानक विभाजन के लगभग 51 वर्षों के बाद का है। विभाजन और इन कहानियों में घटित घटनाओं के बीच की ये दूरियाँ किस तरह तात्कालिक प्रतिक्रिया, संवेदनात्मक अनुभूति, स्मृतिसुलभ लगाव और परिस्थितियों के तटस्थ मूल्यांकन के समानान्तर अतीत के चीरे का रफू कर उन्हें नए सिरे से गढ़ने और बचाने के पहल की अलग-अलग अर्थ छवियों का निर्माण करती हैं, उन्हें इन कहानियों में भिन्न-भिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है। घटनाओं के साम्य, कुछ पात्रों के मनोजगत की एकरूपता और स्मृतियों के बहाने सब कुछ सँजो कर रख लेने की एक जैसी विकलता के बावजूद जिस तरह ये कहानियाँ आपस में एक दूसरे से भिन्न और कुछ जगहों पर एक दूसरे का विस्तार हो पाई हैं तो उसका एक बड़ा कारण विभाजन और इन कहानियों के रचना काल के बीच की यह दूरी ही है।

पाकिस्तान से अमृतसर आया गनी मियाँ (मलबे का मालिक) हो या सराई स्टेशन पर रात के घने अंधेरे में भी अपने गाँव को देखने की ललक लिए जागती मूल सिंह की बीवी (पानी और पुल), इन दोनों की संवेदनाओं का बहुकोणीय विस्तार तरुण भटनागर की कहानी दादी, मुल्तान और टच एंड गो की दादी में देखा जा सकता है। गौर किया जाना चाहिए कि गनी मियाँ और मूल सिंह की बीवी उस स्थान पर खड़े हैं जहाँ उनकी जड़ें और उनका अतीत परस्पर नाभिनालबद्ध हैं। लेकिन दादी अपने उस शहर से दूर की जा चुकी हैं। उनका शहर उनकी स्मृतियों में बसता है, और उनकी स्मृतियाँ उन छोटी-छोटी चीजों में जिन्हें वे विस्थापन के वक्त अपने कलेजे से लगाकर सहेज लाई थीं- बहुत पुरानी उर्दू की स्कूल की एक किताब, पेंसिल से बिंदु मिलाकर चौखट्टे बनाने वाला अधूरा छूटा खेल, अखरोट की लकड़ी की टूटी-फूटी पिटारी, दो पुरानी तस्वीरें, पीतल का छोटा-सा ताला, पाँचवी दर्जे की स्कूल की मार्कशीट, पुराने रंग खो चुके गोटे, सलमा-सितारे, चटके काँच वाला दादी की माँ का चश्मा, कुछ पुरानी चिट्ठियाँ, एक पुराना मुड़ा-तुड़ा पीतल का हार और इसी तरह की कुछ अन्य चीज़ें जिसे कथाकार एक गहरी पीड़ा से आबद्ध हो कर अल्लम-टल्लम कहता है। नहीं! ये चीज़ें अल्लम-टल्लम नहीं, अतीत और वर्तमान को परस्पर आबद्ध रखनेवाला वह सूत्र हैं जिनके भीतर स्मृतियों का अनूठा और आत्मीय रेशमी अंतर्जाल छुपा है।

विगत कुछ वर्षों में हमारे आसपास कुछ ऐसी शक्तियों का बसेरा हो चला है जो इस अनूठे और आत्मीय रेशमी अंतरजालों को तहस-नहस कर हमें अपने अतीत से काट देना चाहती हैं। इन छोटी-छोटी चीज़ों में दादी का वह शहर साँसें लेता है जिसमें उनकी विनिर्मिति के ईंट-गारे का इतिहास लयबद्ध है। दादी इन छोटी-छोटी चीज़ों के सहारे अपने उस अतीत को बचा लेने का जतन करती हैं, कारण कि उन्हें पता है कि अतीत से मुक्त वर्तमान डाल से गिरे पत्ते सा इधर-उधर डोलता हुआ कब और कहाँ विलीन हो जाता है पता ही नहीं चलता। लेकिन अतीत से आबद्ध अपनी जड़ों को बचा लेना इतना आसान है क्या? इसके लिए इसके समानान्तर सक्रिय उन ताकतों से लड़ना होता है जो हर हाल में हमें हमारी जड़ों से दूर रखने को कटिबद्ध हैं। तरुण भटनागर इस कहानी में दादी और पोते के बीच संवेदनाओं की अर्थपूर्ण आवाजाही का पुल विनिर्मित कर उन्हीं ताकतों को बौना और असफल साबित करना चाहते हैं। बच्चे के कम्पास में पाया जानेवाला 'टच एंड गो' जो किसी भी तरह की लकीरें मिटा सकता है और जिसके सहारे दादी का पोता रेडक्लिफ लाइन को हमेशा-हमेशा के लिए मिटा देना चाहता है, की उपस्थिति उसी पुल की विनिर्मिति का मासूम सपना है। लेकिन यह एक बच्चे की मासूमियत भर नहीं उसकी वह दूधिया विकलता है जो इस दुनिया को नए सिरे से सिरजना चाहती है। दुनिया को नए सिरे से सिरजने की यही मासूम अकुलाहट इस कहानी को तमाम एकरूपताओं के बाद अपनी परंपरा की अन्य कहानियों से अलग ला खड़ा करता है। यही वह विशिष्टता है जो एक लंबे समयान्तराल के बीत जाने के कारण एक खास तरह की तटस्थ तन्मयता से युक्त हो कर एक जैसी त्रासदी का शिकार होने के बावजूद दादी को गनी मियाँ और मूल सिंह की बीवी से अलग ला खड़ा करता है।

आज़ादी के बाद हमारे देश में प्रतिक्रियावादी ताकतों की एक ऐसी पौध विकसित हुई है जो स्मृतियों में संचित भाव-संवेगों की सभी सकारात्मकताओं को तहस-नहस कर देना चाहती है। नफरत और दहशत की खेती करनेवाली ये शक्तियाँ वक्त की स्लेट से इतिहास की इबारतों को पोंछ कर हमें जड़विहीन करने पर आमादा हैं। यह कहानी उन प्रगतिविरोधी कारकों को भली भाँति पहचानती है। स्त्रियाँ स्मृतियों की सबसे बड़ी वाहिका होती हैं। जब तक उनके स्मृति कोष का आखेट न कर लिया जाए वर्तमान की चेतना को कुंद नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि समाज और आनेवाली संततियों को जड़ और स्मृतिविहीन बनाने के लिए स्त्रियों को ही सबसे पहला निशाना बनाया जाता है। यह कहानी न सिर्फ उन स्मृतिविरोधी शक्तियों का शिनाख़्त करती है बल्कि दादी और भावी पीढ़ी के बीच स्मृतियों के हस्तांतरण के बहाने नवांकुरों की ज़िम्मेवारी को भी रेखांकित करती है। यह कोई मासूम या रूमानी कल्पना नहीं, स्मृति की सत्ता के सुयोग्य उत्तराधिकारी के तलाश की बेचैनी और सुगबुगाहट है

❑❑❑

एन.एच.-3/सी-76, एन. टी. पी. सी.,
विंध्याचल, पोस्ट -विंध्या नगर, जिला
सिंगरोली, मप्र 486885
मोबाइल 9425823033
ईमेल brakesh1110@gmail.com

फिल्म समीक्षा के बहाने

पिंक- यह सामाजिक ही नहीं राजनीतिक फिल्म भी है

वीरेन्द्र जैन

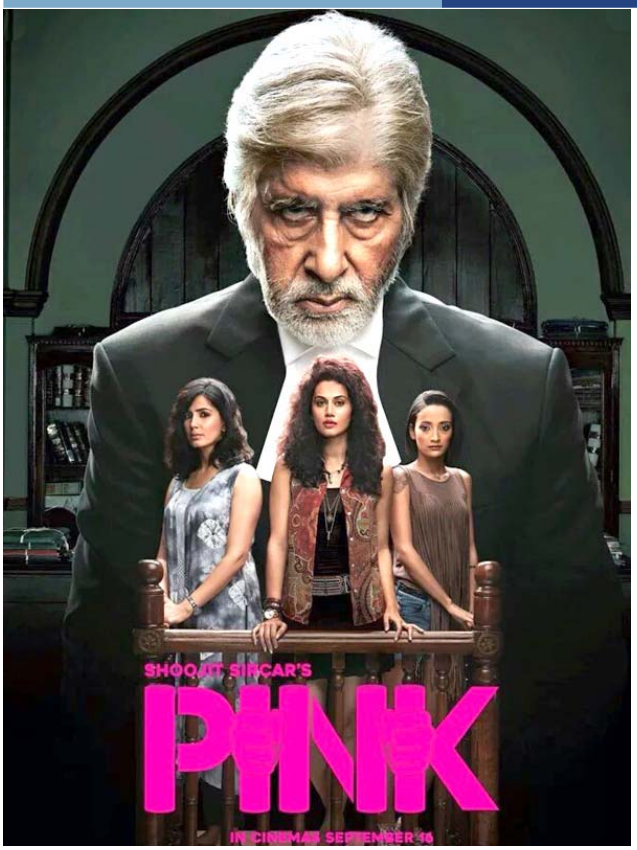

सुजित सरकार की फिल्म 'पिंक' न केवल विषय के चयन में महत्त्वपूर्ण है अपितु उसके निर्वहन में भी सफल है। पिछली सदी से प्रारम्भ महिलावादी आन्दोलनों के बाद जो महिला सशक्तिकरण आया है उससे परम्परावादी समाज के साथ कई टकराव भी पैदा हुए हैं। उन्हीं में से एक को इस फिल्म के विषय के रूप में चुना गया है।

यह बात खुले दिमाग से स्वीकार कर ली जाना चाहिए कि महिलावादी आन्दोलन उसी समय से तेज़ हुआ है जब से महिलाओं को गर्भ धारण करने या न करने की सुविधा प्राप्त हुई है। परिवार नियोजन सम्बन्धी उपायों के विकसित हो जाने के बाद से ही महिला दोयम दर्जे के नागरिक होने से मुक्ति पा सकी है। महिला और पुरुष के बीच गर्भ धारण की क्षमता ही एक प्रमुख अंतर है, क्योंकि गर्भ धारण के दौरान उसे न केवल कठोर शारीरिक श्रम से बचना होता है अपितु बच्चे को पाल कर बढ़ा करने में उसके जीवन का प्रमुख हिस्सा लग जाता रहा है। एक से अधिक बच्चे होने पर वह आजीवन घरेलू महिला होने के लिए अभिशप्त हो जाती है और वैसे ही घरेलू काम अपना लेती रही है। एक मध्यमवर्गीय परिवार के बच्चे को अपने पैरों पर खड़ा करने लायक बनाने में बीस साल लग जाते हैं जिसके लिए कई बार न चाहते हुए भी दम्पति को एक साथ रहना भी ज़रूरी होता है। स्तनपान कराने से लेकर मातृत्व की भावना के कारण महिला की ज़िम्मेवारी बच्चे के पोषण हेतु अधिक महत्त्वपूर्ण होती है तो घर चलाने के लिए साधन अर्जित करने की ज़िम्मेवारी पुरुष के हिस्से में आई है जिसके प्रति वह लापरवाह भी हो सकता है किंतु महिला अपनी ज़िम्मेवारियों के प्रति लापरवाह नहीं हो सकती। यह बात उसे बाँधती रही है, उसकी आज़ादी को सीमित करती रही है। गर्भधारण की स्वतंत्रता के बाद वह पारिवारिक गुलामी से, भावनात्मक गुलामी (इमोशनली ब्लैकमेलिंग) से मुक्त हो सकने की स्थिति में आई है।

दूसरे के श्रम से अपने लिए सुविधाएँ बढ़ाने वाले समाज ने ग़ुलाम बनाने शुरू किए व इतिहास बताता है कि ऐसे प्रत्येक मालिक से मुक्त होने के लिए मानव जाति को संघर्ष करना पड़ा है। हर बेड़ी के अपने स्वरूप होते हैं; जिनमें से कुछ दृश्य होती हैं और कुछ अदृश्य होती हैं। परम्पराओं में ढाल कर कुछ बेड़ियों को इस तरह प्रस्तुत किया गया है जिससे वे प्राकृतिक जैसी लगने लगती हैं। अपने को प्राप्त हर पत्र का उत्तर देने के लिए प्रसिद्ध डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने एक बार लिखा था कि 'मैं आज़ाद को भी उतनी आज़ादी देना चाहूँगा कि अगर वह चाहे तो ग़ुलामी स्वीकार कर ले'। न आज़ादी का स्वरूप किसी पर थोपा जा सकता है और न ही ग़ुलामी के स्वरूप को थोपा जाना चाहिए।

अब महिलाओं को जबरदस्ती उस बन्धन से बाँध कर नहीं रखा जा सकता है जो बन्धन कच्चा पड़ चुका है। महिलाओं की शिक्षा, स्वतंत्र रोज़गार, के बाद उन्हें अपना स्वतंत्र घर भी चाहिए जिससे निकाले जाने का अधिकार अब तक हमेशा परिवार के पुरुष के पास ही रहा है; क्योंकि मकान का मालिकत्व उसे ही प्राप्त रहा है। चर्चित फिल्म की तीन महिला पात्रों में से एक दिल्ली में अपने पिता का घर होते हुए भी किराये के मकान में दो अन्य युवतियों के साथ सहभागी की तरह रहती है व अपना मकान बनवाने के लिए लोन लेकर किश्तें चुका रही है। वह नहीं चाहती कि डान्स के कार्यक्रमों से देर रात लौटने पर उसे परिवार की बन्दिशों का सामना करना पड़े। समझौते से देश को मिली आज़ादी के बाद एक नया सामंत वर्ग उभरा है जो नागरिक अधिकारों, सरकारी सुविधाओं, और कानून के पालन में भी अपनी विशिष्टता मानता है। रोचक यह है कि इस नए सामंती वर्ग की टकराहट पूँजीवाद से नहीं है अपितु यह उसका सहयोगी है। कथा का खलनायक ऐसे ही परिवार का लड़का है जिसे राजनीति में सक्रिय अपने चाचा का संरक्षण प्राप्त है। यही कारण है कि डिनर के लिए ले जाकर बलात्कार करने की कोशिश

करने पर युवती अपनी रक्षा में उसे बोतल से मारकर घायल कर देती है, तो पुलिस उस लड़के की नियम विरुद्ध मदद करती है और पीड़ित लड़की को ही आरोपी बना देती है। लड़के का वकील लड़कियों की स्वतंत्र वृत्ति के कारण उनको ही चरित्रहीन सिद्ध करता है।

यह लड़का और उसके साथी मकान मालिक को धमकाते ही नहीं अपितु उसके स्कूटर को टक्कर मार कर डराते भी हैं जिससे वह स्वतंत्र रूप से रह रही लड़कियों से मकान खाली करा ले और वे बेघर हो जाएँ। कहीं ग़ुलाम परम्परा टूट न जाए इसलिए आसपास के सभी लोग स्वतंत्र लड़कियों को चरित्रहीन मान कर चलते हैं व उस धारणा को स्थापित भी करना चाहते हैं।

आन्दोलनों में एक गीत गाया जाता है- हम क्या गोरे क्या काले, सब एक हैं, हम जुल्म से लड़ने वाले सब एक हैं, एक हैं। प्रताड़ित और अकेली पड़ गई लड़कियों की मदद के लिए एक ऐसा बूढ़ा वकील सामने आता है जिसकी पत्नी (या प्रेमिका) मृत्यु शैया पर है और उसकी सेवा के लिए वह वकालत छोड़ चुका है। एक पीड़ित संवेदनशील व्यक्ति ही दूसरे की वेदना को समझ सकता है। इस वकील की सफल भूमिका अमिताभ बच्चन ने की है। यह वकील पर्यावरण के प्रदूषण से ही पीड़ित नहीं महसूस करता अपितु समाज में खत्म होती जा रही संवेदनाओं की साफ हवा की कमी को भी महसूस करता है। उम्र ने ऐसे लोगों की आवाज़ों को शिथिल कर दिया है व जज को उसे कहना पड़ता है कि थोड़ा तेज़ बोले। यह वकील, जज और मकान मालिक जैसे कुछ लोग इस बात का प्रतीक है कि मनुष्यता के पक्ष में आवाज़ उठाने वाले कुछ उम्रदराज लोग ही बचे हैं, और वे भी प्रदूषित वातावरण में अकेले पड़ते जा रहे हैं।

पुलिस और नौकरशाही अपराधी राजनीतिज्ञों और उनके परिवारियों के खिलाफ कानून का पालन करवाने में डरती है। होटल मालिक जैसे व्यवसाय करने वाले उन्हीं के पक्ष में अनुकूल गवाही देने को मजबूर हैं। यह संयोग ही है कि न्याय व्यवस्था में कहीं कहीं कुछ संवेदनशील न्यायाधीश, या निरीह महिला पुलिसकर्मी दिख जाती हैं।

यह यथार्थवादी फिल्म स्पष्ट संकेत देती है कि यदि कुछ संयोग घटित न हुए होते तो व्यवस्था स्वतंत्र होने का प्रयास करती लड़कियों को हत्या के प्रयास व अवैध देह व्यापार के अपराध में सज़ा दे चुकी होती। महिला सशक्तिकरण कानून के दुरुपयोग को लेकर समाज में व्याप्त धारणाओं और उनके पक्ष की महिलाओं को बड़ी बिन्दी वाली ब्रिग्रेड बताने के संवाद बताते हैं कि बदलाव पर विमर्श न चाहने वाले उनकी निन्दा करके या चरित्र पर हमला करके अपनी घृणा व्यक्त करते रहते हैं। महात्मा गाँधी भी राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक स्वतंत्रता को अलग करके नहीं देखते थे। यही कारण रहा कि उन्होंने अछूतोद्धार, और स्वतंत्रता संग्राम साथ-साथ चलाया था। जो राजनीति, सामाजिक स्वतंत्रता के आन्दोलन को दूर रख कर चलती है उसको गहराई नहीं मिलती। इस तरह यह फिल्म सामाजिक सवाल उठाते हुए राजनीतिक सवाल भी उठाती है।

❐❐❐

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल [म.प्र.]
462023 मोबाइल 09425674629

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान'' हेतु पुस्तकें आमंत्रित

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान''

हेतु चयन प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। इस प्रक्रिया में वर्ष 2015 तथा 2016 में प्रकाशित हिन्दी उपन्यासों तथा हिन्दी कहानी संग्रहों पर विचार किया जाएगा। सम्मान समारोह अगले वर्ष 2017 में अमेरिका में आयोजित किया जाएगा। इस हेतु पुस्तकें आमंत्रित हैं।

पुस्तक पर लिखें

''ढींगरा फ़ाउण्डेशन अंतर्राष्ट्रीय सम्मान हेतु''

लेखक, प्रकाशक, पाठक कोई भी इस सम्मान हेतु अनुशंसाएँ पुस्तक की दो प्रतियों के साथ भेज सकते हैं।

31 दिसम्बर 2016 तक प्राप्त पुस्तकें चयन प्रक्रिया में शामिल की जाएँगीं। सम्मान हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ इस पते पर भेजें-

पंकज सुबीर (समन्वयक-भारत)
पी. सी. लैब
शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने
सीहोर 466001, मध्य प्रदेश
दूरभाष 07562-405545
मोबाइल 09977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

प्यार ज़िन्दगी है

कृष्णा अग्निहोत्री

प्यार ज़िन्दगी है

मैं इस समय मुस्कराती हुई सोच रही हूँ कि मेरे सभी इंटरव्यूज़ में छात्राओं का एक प्रश्न सदा सम्मिलित रहा है। जिसका उल्लेख मैं अपने पिछले पृष्ठ में कर चुकी। सभी ने यह पूछा कि मैडम आप क्या इस उम्र में भी प्यार कर सकती हैं? यह प्रश्न शायद उस लेखिका से पूछा गया है जो उम्रदाँ है व जीवन के अंतिम पड़ाव पर है। मैं जानती हूँ कि हाँ कहने पर बहुत से लोग मुस्कराएँगे। कुछ व्यंग्य से हँसेंगे। क्योंकि भारतीय परंपरानुसार तो वृद्धों को 60 के बाद ही वानप्रस्थ में चले जाना चाहिए। यदि अब ये संभव नहीं तो यह तो संभव है कि आप मंदे रंगों के वस्त्र धारणा कर मंदिर में या अन्यत्र भजन पूजा अर्चना ही में जीवन बिताएँ। आपका मुख्य कर्तव्य है कि जिन बच्चों को आपने पाल पोसकर बड़ा किया है उनके बच्चे पालें। यदि बहू सर्विस करती है तो रसोई सँभाल उसके बच्चे व घर की देख-रेख करें। ऐसी शालीन संभ्रांत परंपरा को तोड़ आपने इतनी हिम्मत कैसे कि आज प्यार जैसी भावना के बारे में सोचें छी, वृद्ध होकर ऐसी घृणात्मक बात कैसे आप सोच सकते हैं? कितनी अश्लीलता है आपके जीवन में-

अरे साहब आप जिस देश में रहते हैं वहाँ की पंचायतें तो प्रेमियों को फाँसी दे देती है। आप वृद्धावस्था में प्रेम की बात सोचते हैं? आपको शर्म आनी चाहिए। आपको तो समाज, व्यक्ति, साहित्यकारों ने भी पत्थर मारने की चेष्टा करनी चाहिए, जबकि आधुनिक वर्ग तो प्रगतिशीलता का दावा करता है।

ठीक है मेरी जैसी परम्पराओं में बँधी शालीनता व शील हेतु चिंतित महिला इन सब पचड़ों में नहीं पड़ना चाहती पर चाहने या न चाहने से भला आप परिस्थितियों को बदल सकते हैं? या उनका निर्माण कर सकते हैं?

मैं भी मनुष्य हूँ, प्राणी हूँ कभी भी किसी भी परिस्थिति का शिकार हो सकती हूँ। हाँ, मुझमें यह अभाव है कि मैं नाटकीयता का मुखौटा लगाकर नहीं जी सकती। मैं ऐसी भजन मंडली में नहीं जा सकती जहाँ ज़ेवर, कपड़ों की भीड़ हो। नाच-गाना अब खाना-पीना हो जैसे वो किटी पार्टी हो। सब सोच मेरी एक प्रशंसक एवं छात्रा ने पैदा किए। उसने सीधे से एक दिन फ़ोन किया व भेंट हेतु आ गई। मैंने भी यह सोच कर कि वो भीकनगाँव के पास से किसी गाँव से आ रही है, यह अपना नैतिक कर्तव्य समझा कि उसे मदद करनी चाहिए। भेंट की। वो हिन्दी में पी-ऍच.डी. कर रही थी और मेरी उसकी ओर पूरी दृष्टि सहयोग की ही थी। मैं उसकी गाइड नहीं थी। इसलिए जो समझा सकी समझा दिया। अचानक वो गदराई व स्वस्थ लड़की कहाँ खो गई यह मुझे याद तो था पर मैंने उसे कुछ खास तवज्जो नहीं दी। अचानक एक वर्ष बाद पुन: अपने भारी भरकम बस्ते के साथ आई। उसे देख मैं सनाके में आ गई और प्रश्नार्थ दृष्टि से उसकी ओर ताका। एकाएक वो उठी और मेरे गले लग रोने लगी। कुछ देर बाद चाय पानी पी वो बोली, ''मैडम आपसे अब क्या छुपाना। यदि मैं नहीं बताऊँगी तो भी घुटती ही रहूँगी।''

- हाँ, हाँ कहो न हुआ क्या? तुम इतनी पीली क्यों हो।

- ये देखिए। उसने अपना बड़ा सा मोबाइल मुझे दिखाया। उसमें एक विचित्र-सी फिल्म चल रही। मेरे समझ से वो परे थी।

- बंद करो, इसे ये क्या किसी जंगल की कहानी है?

- नहीं। ये ब्ल्यू फिल्म है।

- मैं सनाके में आ गई।

- मैडम मैं एक लड़के साथ 'लिव इन रिलेशनशिप' में रही।

- आपके पैरेन्ट्स को पता है?

- नहीं। मैं लायब्रेरी कन्सल्ट करने के बहाने एक कमरे में राज के साथ ठहरती थी और पुन: वापसी करती। कमरे का किराया कम हो इसलिए राज के साथ रहती। वो यहाँ एम.बी.ए. कर रहा है। मुझे खजूरी बाजार में पुस्तक खरीदते समय मिला था। शनै:-शनै: हम प्यार से होते इस रिलेशनशिप में आ गए। दोनों अपनी डिग्री पूरी कर शादी कर सैटल होना चाहते थे। राज ने ही मुझे ड्रिंक की आदत में ढकेल दिया और ज़िंदगी चलने लगी। मैंने स्वयं को इन सब आदतों के बीच बहुत असहाय पाया। सारा कुछ रंगीन और चकाचौंध से भरा था। लैपटॉप पर फिल्में, शराब पीना और मस्ती। कहाँ गाँव गावड़ा याद रहता। माता-पिता का भला इस दुनिया से क्या परिचय होता? वो तो इसकी कल्पना भी नहीं कर पाते।

- तो अब पीऍच.डी.?

- मैडम डिग्री भूल मैं फ्रेंडों व पब में राज के दोस्तों के साथ आते-जाते सामूहिक झुंडों में मस्ती करती कोई शील, नैतिकता का चक्कर न था। एक-एक क्षण हम मस्ती में भोगते रहे... क्षण बीतते गए और वर्ष बाद मेरे हाथ कुछ न लगा। मिली तो अस्वस्थता। खून की कमी, पीने के बाद आरोप-प्रत्यारोप। राज को रोज़ नई गर्लफ्रेंड चाहिए थी। मैं वो सब नहीं सह पाई। जब उसने मुझे अपने से दूर हटा दिया तब होश आया।

- अब क्या करोगी?

- अब तो सँभलने में समय लगेगा। आदतें तो बिगड़ गईं हैं।

- तुम लोग किसी की बात कहाँ सुनते हो? विदेशों में ये होता है

ऐसे कपड़े पहने जाते हैं। और फिल्मों में 36-32-30 का फिगर है तो तुम भी उसी के लिए कोशिश करोगी कोई बुद्धि का विकास नहीं होगा।

– एकदम सही। मुझे राज ने 'सनी लियोन' की फिल्में दिखा रोज़ यह कहा– ''मुटा मत थोड़ा वेट कम कर।'' अब देख सनी लियोन की टी.आर.पी. कितनी ज़्यादा है।

मैं तो खाते-खाते भारतीय ग्रामीण परिवेश की लड़की थी। उसके चक्रव्यूह में फँस गई थी। लेकिन मैडम जो राज की फ्रेंड्स आती थीं न उन सबके मोबाइलों में ऐसी ही फिल्में लोडेड थी। वे भी एक दो पैग आसानी से पी सिगरेट भी धौंकती हैं। कॉलेज से पब जा डी.जे. पर डांस, कम्पेनियन चेंज सब वहीं होता है... ऐसा लगता है पूरा शहर ऐसे ही वातावरण में डूबा है और कुछ नहीं। महँगे कपड़े, महँगे मॉल, महँगे खाने, महँगी मस्ती और उसे पाने के लिए सस्ते जिस्म का सस्ता इस्तेमाल, मुझे तो धीरे-धीरे इस सबसे वितृष्णा हो गई।

– मैंने उस समय तो उसे जाने को कहा। अभी जाओ कल आ जाना।

प्रिया चली गई पर मेरे सामने छोड़ गई सदी का प्रश्न। जहाँ सपने उमड़कर लहरों से थपथपाते आपस में टकराकर बिखर जाते हैं। ये सब युवा उत्तेजना के अलाव में तपते कहाँ से रास्ता कैसे खोजेंगे। जबकि पढ़ते हैं। और बड़ी-2 नौकरियों में प्लेसमेंट हेतु रातों जाग उसे पाने हेतु प्रयत्नशील भी हैं; लेकिन पढ़ाई एक क्षेत्र में हैं जहाँ उनकी यह दूसरी खोज भटकन के अँधेरे में ही है। उसे चौंधने वाला प्रश्न नहीं हैं; जिसे वे पाना चाहते है पा लें। पर वे बाज़ारवाद व सैक्स के बाज़ार में सब कुछ पाना चाहते हैं। जो एक कूप में ढंग की खोज होगी।

हम जानते हैं कि काम वासना प्रकृतिदत्त ही है। हमारे पूर्वजों ने उसका महत्त्व आँक मंदिरों में उसे उकेरा भी है। लेकिन किसी भी भावना का अतिरेक यदि बीहड़ बियाबानों में उलझा तो उसका आनंद नहीं होगा। प्रसाद ने कहा भी है ''छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य गति से लो जीवन सुधार।'' पीड़ा यह है कि यह पीढ़ी अपनी जीवन शैली की गलतियाँ को भी उचित सिद्ध कुतर्कों से करती हैं। कैसे वो यह भूल गई कि प्रत्येक देश की एक संस्कृति एवं सभ्यता होती ही है तब हम ही क्यों दूसरों से इतना अधिक प्रभावित हो जाएँ कि स्वयं को ही उनसा बना गर्व अनुभव करें। विदेशों में सैक्स षड्यंत्र व हिंसा उबल रही है। छोटे-छोटे बच्चे उम्र से पूर्व बड़ा सा काम करना चाहते हैं। जबकि सभी जानते हैं कि विदेशों की स्त्री, पुरुषोचित भावना में डूबकर भी सुखी नहीं। रेप, हिंसा जैसे हवा उनके जीवन में घुली जा रही है, पूरी शताब्दी ही सैक्स, नशे व अश्लीलता में बह रही है। प्यार जैसी कोमल भावना को सैक्स ने इतना रौंद दिया है कि उसके मायने ही बदल गए। पर वे सैक्स को प्यार मानते हैं।

भय लगता है कि यदि युवा इस चक्रव्यूह से बाहर न आया तो क्या होगा देश की समस्याओं का, समाज और सभ्यता का, संस्कृति का। पूरे समय मोबाइलों व लैटटॉप पर यदि अश्लीलता परोसी जाएगी तो वह मानसिकता को जंग लगा देगी क्योंकि उत्तेजना से युवा, सड़कों में दहशत फैलाते लड़कियों को रेप ही करेंगे। विज्ञान व विकास का यह दौर विस्फोटक अधिक होता जा रहा है। दुखद यह है कि युवा न तो हमारी बात समझता है न हमें बुद्धिमान मानता है। हम सब उनकी दृष्टि में मूर्ख एवं पिछड़े विचारों के ठहरते हैं। ओल्डी कहकर मजाक बनाता है।

बात यही नहीं रुकती। एक वर्ष बाद प्रिया बहुधा शनिवार को देर तक काम करती। उसके साथ उसका ममेरा भाई यश आता। खामोशी से बरांडे ही में कुर्सी खींच वहाँ बैठकर मुझसे पत्रिकाएँ ले पढ़ता व हमारी बातचीत पर भी कान देता। इस बीच बहुत नरमाई से पूछने लगता : ''मैडम कोई काम तो नहीं है न।'' फोटोकॉपी, टाइप या मेडिसिन लाने का दायित्व वो उसे बहुत स्नेह व आदर से निभा देता। मेरे लेखन व पुस्तकों के विषय में उसकी उत्सुकता व जिज्ञासा को प्रिया ही शांत कर देती। यश की उम्र लगभग 22-23 वर्ष की होगी। वो इंजीनियरिंग के फायनल में था। प्रिया ने बताया कि वो मध्यम वर्ग का लड़का है। उसके पिता खरगोन में पोस्ट मास्टर हैं। यश प्रारंभ ही से टॉपर रहा है और उसे स्कॉलरशिप मिलती है, लड़कियाँ तो उसे घेरे रहती हैं। लेकिन लड़का चुप अधिक रहता है। मुखर नहीं है। मैं स्वयं भी उसे समझने की चेष्टा अधिक नहीं करती, न ही वो मेरे लिए विशिष्ट था या ज़ेहन रखने योग्य था।

दो वर्ष बीते। प्रिया की थीसिस पूरी हो गई व वो टाइप के लिए चली गई। उसके पेज ले यश बहुधा मेरे घर आ जाता। उसे हमेशा यह स्मरण रहता कि मैं कब उठती हूँ, खाना खा विश्राम करती व लिखती हूँ। उस संध्या सामने लगे अमलतास पर पीले लाल गुच्छे सज गए। उनमें कोई झूठा आश्वासन नहीं था न ही कोई अनकही कहानी। पास ही लगा चम्पे का पेड़ भी सुगंधित फूलों से पट पड़ा था। पर उस पर कोई भँवरा नहीं बैठ रहा था। क्योंकि उसके फूलों में ऐसा पराग नहीं था, जिसके बल पर वो किसी को भी पास आने देता। मैंने कभी अपने दिल को दिल फेंक नहीं बनाया। तभी तो जब मैं अपने अकेलेपन व बीहड़ता का जिक्र कर कहीं दुखी होती हूँ तो मेरे मित्र व्यंग्य से छलनी कर देते हैं। अब भुगतो न। आदर्शों में जीना चाहती हो न। मेरे पास उत्तर तो है पर अब निरर्थक बकवास में उलझ स्वयं ही को क्यों घाटे में उतारो। जब मैं किसी पर विश्वास न कर सकी तो कैसा आदर्श या आदर्श जीवन के दर्दों से घायल जख्मी मैं इस उम्र में सीधे भटक अपना जीवन ऐसे ही छात्राओं व लोगों को सलाह-सहयोग दे जीवन ढो रही हूँ। उस दिन वो मेरे लिए एक खास दिन रहा। वातावरण से सन्नाटे व उदासी को चीरते यश ने घंटी बजाई। दुपट्टा ढूँढ़ती मैंने एज़ यूज्वल अपनी बेहूदी चाल के साथ दरवाज़ा खोला। पूरे दरवाज़े की ऊँचाई जितने लम्बे यश ने बेहद नरमी से पूछा।

– कुछ क्षण ले सकता हूँ आपके?

– बहुत से क्षण ले लो। आओ अंदर।

– वो अंदर आया, कागज़ हाथ में थमा मेरी ओर पहली बार तेज़ दृष्टि डाल बोला– ''अब मैं तैयार हूँ।''

– मतलब? मैंने आश्चर्य से पूछा।

– ''जी, हाँ अब मैं दृढ़ता से कह सकता हूँ कि आप मेरा आना बंद मत करिएगा। मैं भौंचक खड़ी की खड़ी रह गई और यश जा चुका था।''

वो रात मेरी बेचैनी की थी। ये कैसा अनर्थ है एक पच्चीस वर्ष का लड़का एक 65

वर्ष की महिला का मज़ाक बना रहा था। उसे मेरे विषय में कोई भ्रांति है, ऐसा तो नहीं है कि मुझे किसी झांसे में ले रुपया ऐंठना चाहता है या उसका कोई और स्वार्थ है।

मेरे सबसे अच्छे दोस्त ने सुना तो हँसे। तो मैडम इसमें दुखी होने की क्या बात है, यह कोई अजूबा तो नहीं। पूर्व रवीन्द्रनाथ ठाकुर से एक चौदह वर्ष की लड़की बहुत प्यार करती थी। निर्मल वर्मा की दूसरी पत्नी उनसे छोटी थी। ऐसे कई उदाहरण हैं। क्योंकि यह प्यार जिस्मानी नहीं रूह का है।

तब तो ठीक है। वैसे मैं तो न कोई बड़ा पुरस्कार प्राप्त कर सकी, न देहली की लेखिकाओं-सी मेरी लोकप्रियता है। दो दिन बाद ही यश पुन: आया तो मैंने उसे समझाया। अच्छा है आप मेरे लेखन से प्रभावित हैं वैसे मेरी उम्र व बीमारियों से आप अवगत नहीं। मेरे पैर ही कब्र में लटके है। आपको अपनी उम्र की किसी युवा लड़की से ही प्यार करना चाहिए। यश, प्यार, आदर, श्रद्धा में अंतर होता है। यश चुपचाप चला गया पर वो एक झिलमिलाते शाम को पुन: आया व मेरी ओर एक टॉफी बढ़ा बोला, ''ये अच्छी स्वास्थवर्द्धक है।'' मैंने टॉफी उठा कहा। ''तुम गर्मी में लाल रंग व काला रंग मत पहना करो।''

– जी पर मैं पुन: कहता हूँ आप जैसी भी हैं वैसी ही को मैं दिल से प्यार करता हूँ। जहाँ तक जिस्म का प्रश्न है वो 10 साल बाद भी मेरा ऐसा ही रहेगा तो उसको लेकर कोई तक क्यों?

– नहीं, शरीर 50 के बाद विघटित व बूढ़ा होता है।

– मेरी दृष्टि में आपका शरीर नहीं। मैं सब जानकर भी यही दुहराऊँगा मैडम कि मैं आपसे बेहद लगाव रखता हूँ। ये तीन साल का अनुभव है। जो अब व्यक्त है। मैं कही भी रहूँ आपसे मिलने ज़रूर आऊँगा। टाइम विल डिसाइड कि मेरी बात में कितना सत्य है।

कैसे यश को समझाऊँ कि जिस औरत को उसने प्यार से गले लगाने को चुना है। उस औरत के भीतर की औरत तो आँधियों में मर गई। वो मुझे हसीन वादियों में चलने का ख़्वाब दिखा तो रहे हैं पर मैं अब चल ही नहीं सकती। दुनियाँ, समाज, परिवार आज भी अपने दायरों में बँधे हैं उनके विचारोंनुसार जीना हम वृद्धों की नियति है। खुले विचार कहीं भाषणों में होते हैं पर वे दुनिया को बदल नहीं सकते। वृद्ध होने की प्रक्रिया से भले ही व्यक्ति परिचित न हो पर वो तो सबको अपना कवच पहनाती ही है इसलिए वृद्धावस्था को मात्र नीरस, बेरंग व सीमा में जीने का आदेश समाज को नहीं देना चाहिए। थकी जिंदगी अब पेड़ों की छाँह चाहती है जीवन के लुफ्तों का दृश्य देखकर वह प्रसन्न हो गए। किसी के साथ व स्वयं को चिंताओं लांछनों, अपमान को तार-तार होते नहीं देख सकती।

यश पहले अच्छा लड़का था अब सुंदर 'लुभावना' आत्मनिर्भर युवा। उसके सामने खुशियों की खिलखिलाहट है। मैं छुपकर स्वयं को उसकी चाहत का निशाना बना सकती थी। दिल भी चाहता है कि क्यों सामने ख़्वाबगाह को छोड़ूँ। पर मस्तिष्क धिक्कारता है। छोटे से बच्चे को तुम्हें ही सँभालना चाहिए। मैंने संतुलन बना लिया। मैं यश से स्नेह बरकरार रखूँगी और उसे स्वयं के बूढ़े आँचल की जगह किसी अन्य झिलमिलाते क्षितिज की खोज पर मोड़ एक नई दिशा देने की पूरी समग्रता से प्रयत्न करूँगी। क्योंकि ऐसा न करने पर शायद मैं स्वयं की दृष्टि में नीचे गिर जाऊँगी।

वैसे यश परिपक्व विचारों का व्यक्ति भी है। वो मुझे स्पष्ट समझाता है, ''भूल जाएँ अतीत व अतीत के जख़्मों को। जीना सीखें, वर्तमान में जो नहीं पाया उसे पाकर संतुष्ट हो।'' आपके साथ मैं हूँ, जो आपको पल-पल खुशी देना चाहता है। यश का सिलेक्शन फॉरेस्ट डिपार्टमेंट में हो गया। गजेटेड ऑफ़िसर की ट्रेनिंग में वो जा रहा था। एक बार गले लगने की उसकी पवित्र अभिलाषा को भी मैंने टाल कर कहा-समय हमारी नियति परिभाषित करेगा। वो उदासी ओढ़े चला गया मैं छुपे आँसुओं के प्रवाह में भी यह सोचने से मुक्त न हो सकी कि इस आलेख व डायरी के पृष्ठ फड़फड़ाते ही कुछ लोग पुन: उसकी खोज में लग जाएँगे कि ये बंदा यश कौन है। यश नाम के व्यक्तियों को सँभल जाना चाहिए। मैं तो पुन: अपने ही द्वारा अपनी हत्या कर बैठी। पर मेरी मरी देह पर भी ढेरों चर्चा जन्म लेंगी। तो लीजिए लुफ्त इन चर्चाओं का। पर यह सच है कि इस बार भी मैंने कुछ ठुकराया है शायद इस फलसफे को भी कुछ व्यक्ति गलत दृष्टिकोण में मापेंगे। कुछ कहेंगे कि आप आकर्षित कर व्यक्ति को ठुकराती हैं पर मैं जानती हूँ कि मैं विचारानुसार विश्वास भर करती आई हूँ। यदि मेरी आदत विश्वास करने की है और यदि किसी की अविश्वास करने की है तो मैं क्या करूँ? वैसे मैं सदा से विश्वास करती हूँ कि प्यार ज़रूरत है उसका प्रारूप, कई रिश्तों में होता है ज़रूरी नहीं कि वो शरीर से ही जुड़ा हो।

हमारे कुछ मित्र अत्यंत विश्वसनीय होते ही हैं जिनसे हम लगाव व प्रेम करते है। बेटे भाई-से मित्र होते हैं, जिन्हें हम रिश्तों से नाम देकर भले ही न पुकरें पर सारा तो खेल भावनाओं का ही होता है। जहाँ तक रिश्तों को नाटकीयता से जीने का है वह व्यक्तित्व की ईमानदारी पर निर्भर है।

जन्मदिन पर

आज आठ अक्टूबर है। पता नहीं कैसे अचानक इस दिन को मेरी बेटी नीहार ने इतना महत्त्व क्यों दे दिया। वो जब दस ग्यारह वर्ष की थी और मैं अपने संघर्ष के ऊँचे मुकाम पर खड़ी कृषि-विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी-हिन्दी पढ़ा रही थी, तब इस दिन जब मैं अपने आधारतल वाले फ़्लैट में पहुँची तो बरांडे में रखी किराए की डायनिंग टेबल देख अचकचा गई। क्योंकि वहाँ मीठा, केक व मोमबत्ती सजी थी। वह निहार मेरे पुराने सर्वेंट रूपनारायण के साथ मुस्कराती कह रही थी -हैप्पी बर्थ डे मम्मी, और दौड़कर वो मेरे गले लग गई। तब से प्रत्येक वर्ष वो इसे महत्त्व देती है। अन्यथा इस साँवली दुबली-पतली कान्यकुब्ज लड़की का जन्मदिन किसी को भी स्मरण न था। वो आता व पानी-सा बह जाता। हाँ, माँ-भाई को पट्टे पर बैठा टीका लगा, खीर खिला उसका जन्मदिन तो निश्चित मनातीं। पर मुझे यह कभी बुरा नहीं लगा। मुझे तो मेरी घूटी में पिला दिया गया था कि तुम लड़की हो, कन्या हो तुम्हारे जन्म का क्या महत्त्व? इसलिए हम उसे क्यों मनाएँ। बाद में किसी दिन माँ ने बताया कि मैं पितृपक्ष की बुढ़िया नौमी पर पैदा हुई। पढ़ा कि बेटी लक्ष्मी है और जहाँ रहेगी वहाँ सुख-समृद्धि तो आएगी। माँ ही कहती थीं कि मेरे जन्म के बाद ही पिता सम्पन्न व प्रसिद्ध हुए।

सच पूछो तो लड़की व औरत होकर

खुश होने के अवसर स्मरण नहीं, अल्हड़ सी घाघरी ब्लाउज पहने सहजता व सरलता से अपने सीधेपन को बरकरार रखे मैं अपने सामने एक चुलबुली लड़की को खंडवा की गलियों में चौकस हँसते याद कर रही हूँ। जो किसी भी दुमंजले-तिमंजले पर फटाफट चढ़ती-उतरती अपने सहेलियों से आत्मीयता बरतती। न खौफ, न भय एकदम सांसारिक रिश्तों में प्यार ढूँढ़ती, पर स्वयं के अस्तित्व का महत्त्व दे उसे निखारने में भी अनजान थी। इसीलिए भाई-बहनों व पति, देवर के जन्मों को ही महत्त्व देती रही। मेरा धर्म था माँ-पिता परिवार की सेवा। बस साँझ के समय में अनजाने अनमनेपन से घिर जाती। पर उसमें भी जन्म होने व हो जाने की कोई खुशी या अवसाद तो न था। कोई हंगामा नहीं, बोलने में भयभीत। अभी भी याद है कि मैट्रिक के एक वायवा में किसी भी प्रश्न का उत्तर सटीक न दे पाई थी। हमेशा निर्बल रही कोई भी डांटे, ताने दे प्रतिक्रिया में चुपचाप रोना ही था। समाज बोध कुछ नहीं समझता तब परिचितों के खुश रखने के लिए, कुछ करने के लिए भाग दौड़ जो आज भी बरकरार है, जो कभी-कभी आज भी बड़ी पीड़ा देती है। प्रेम, विश्वास, महत्त्व न मिलने पर उस जगह को छोड़ तो देती, पर यदि वहीं से किसी ने क्षमा याचना के साथ पुकारा तो तत्काल आगे बढ़ जाती। यह क्रम आज तक जारी है। मुझे खेद भी होता है कि मेरी जैसी बोल्ड निर्भीक महिला ऐसी समझौतावादी प्रकृति क्यों अपना लेती थी; जबकि सच कहने में मुझे ज़रा भी हिचक नहीं इसीलिए उम्र के इस पड़ाव पर आठ अक्टूबर के लिए कोई खुशी नहीं। वैसे भी निहार के कारण बहन-बहनोई भी बहुधा आ जाते हैं। मंजुल तो आता ही है। वह भी आया अब पड़ोस में रहने वाली भाभी भी आती हैं। बस किसी संस्था, पत्रिका, साहित्यकार को यह तारीख याद नहीं। सुना था मालती जोशी का जन्मदिन यहाँ भोपाल में धूमधाम से प्रशंसकों ने मना खूब खान-पान किया। पर मैं संतुष्ट हूँ कि यह सब मेरे घर नहीं हुआ क्योंकि खुश हो, बंदोबस्त अकेली बेटी करे यह मैं नहीं चाहती इसलिए यह दिन भी अन्य दिनों सा साधारण ही रहे तो बेहतर। हाँ एक बार जब स्व. चन्द्रशेखर दुबे ने जन्मदिन पर सभी साहित्यकारों को आमंत्रित किया तब उनकी बेटी को पैर की तकलीफ बावजूद बंदोबस्त करते देख थोड़ी पीड़ा उनके चेहरे पर पढ़ी थी, मैंने इस समझा और सोचा जब अपनी इतनी सीमाएँ है तो जन्मदिन मनाने से क्या लाभ? वैसे पढ़ती रहती हूँ कि फ्लाँ 75 वर्ष का हुआ तो धूमधाम.... वगैरह पर मेरे दिमाग में एक ही विचार कौंधता है कि क्या कहाँ लिखना चाहिए समापन समय में जितना श्रेष्ठ दे दिया जाए तो दे दूँ। यद्यपि आज यह भी तो सोच रही हूँ कि क्या मैंने कुछ भी नहीं लिखा जो एक भी देश के विद्वान ने मेरा नाम पुरस्कार हेतु नहीं प्रस्तावित किया? यह भी उलझन साल रही है कि देहली के समीक्षक जब पूर्ण महिला लेखन की चर्चा करते है। तब मुझे क्यों उपेक्षित करते हैं तब अपने जन्मदिन में अकेले होने की व्यथा सालती है। कोई तो ऐसा होता जो मेरे लिए कहीं पी.आर.ओ. का काम करता। आज भी इत्तफाक से नीहार भोपाल में देवर के पुत्र की सगाई में जाने के पूर्व गुलदस्ता व एक गिफ्ट दे गई है। पर मैं इन्हीं दीवारों के बीच अकेली बैठी सोच रही हूँ कि कोई मुझे सरस्वती के मंदिर तक तो ले जाए। अच्छा हुआ कि इस सोच को बगल की श्रीमती मोहनी बाजपेयी ने व्यावहारिक रूप दे दिया। जब मैं चिंतित या कुछ तनाव में आती हूँ तो मेरा पैर ठीक से काम नहीं करता और मैं हाँफने लगती हूँ। जो भी हो सहारा देकर ही मंदिर की सीढ़ी पर बैठ वापस आ गई। और अब अतीत की धुँधली तस्वीरें किसी खोह से पंक्तिबद्ध निकलीं हाथ पैर हिला वर्तमान को व्यथित कर ही रही हैं। जीवन भर ज़िंदगी की शतरंज पर चालें चलना नहीं सीखा। इसलिए जो चाल हार गई उसे पुनः जीता नहीं जा सकता। बस हार का कारण व प्रतिफल नाप सकती हूँ। कुछ असफलताएँ सच्चाई व ईमानदारी की शर्तों पर जीने के कारण, बेईमानी की दीवारें फाँदनी पड़ी पर बेईमानी व सच्चाई भी तो समय स्थिति का घटना के साथ परिभाषित होते हैं। अधिकांशतः आत्मकथा प्रशंसित हुई पर कई प्रख्यात व्यक्तियों ने दुश्मनी मान ली और इसका दुष्परिणाम मुझे आज पता चला जब मेरे अच्छे संग्रहों की भी प्रकाशकों ने वापसी की सूचना दी। इसलिये आज क्यों ऐसा अहसास हो रहा है कि इतनी तकलीफ भोगी पर क्या पाया कुछ पूर्व के वर्ष, क्या पुनः जिए जा सकते हैं? ताकि अपनी वे चूकें सुधार लेती जो निर्णय समय पर नहीं लिए उन्हें ले पाती। पूरे वातायन को याद कर मैं आज अपने आदर्शमय संस्कारों की मोहवश ज़िंदगी के कई सुखमय क्षणों को खोदने पर उन पर विचार अब भी कर रही हूँ कि उन्हें कैसे अनुचित या उचित की किस परिधि में बाँधू? क्योंकि उन प्रभावों में दुविधा भी है। कभी वे उबाऊ, परंपरागत व रूढ़िग्रस्त लगते हैं तो कभी मानसिक शांति भी देते हैं कि मैंने तो ठीक किया, प्रतिफल जो भी है उसे भोगना चाहिए। जैसे मैंने कभी दूसरी औरत होना नहीं स्वीकारा अन्यथा कितना रुपया, पद व सुविधाएँ अर्जित की होतीं। आज भी कुछ उम्र की सीमाओं में ये लगता है एक बेटा और होता, जो मर गया वो जीवित रहता तो शायद मेरा व नीहार का जीवन बहुत सारे कष्टों से बच जाता। पर नातिन है, बहुत कर्मठ मेहनती निर्भीक, स्वावलंबी, बुद्धिमान। लेकिन स्त्री होने की सीमा उसके साथ भी तो है। तो क्या इन अभावों के साथ लंगड़ाकर ही जीना पड़ेगा? पति, भाई, माँ व पिता के न रहने से जो अनाथपन की चिटकन है वो आज चौड़ी हो रही है कुछ प्रश्न हिलाते हैं काश! अस्पताल व डॉक्टर राजनीति के दुष्चक्र में फँस पद व पदहीन आम व्यक्ति की देखभाल ठीक से करते तो नहीं हिचकते। भाई यूँ न चला जाता। पिता के समय में हार्ट का कोई इलाज होता जैसा अब है, तो वे शीघ्र न मर जाते। काश! मेरे बहनोई में पत्नी के समर्पित भाव की प्रतिष्ठा होती तो उसे आत्महत्या न करनी पड़ती। काश मेरे भतीजे जायदाद के लोभी न होते तो मेरी माँ कुछ वर्ष और जी जाती।

नहीं ये संभव ही न था क्योंकि प्रारब्ध यही था। अब मैं संतुलित हो रही हूँ। शांति हुई मुझे कि मैंने माँ की बरसी होशंगाबाद की गायत्री पीठ में संपन्न की। उन्हें अनुभव नहीं होने दिया कि मैं लड़की हूँ। हाँ, जो प्रारब्ध रहा उसे बदलना मेरे वश में नहीं जो युवती घर से बेघर की गई। प्रताड़नाओं में साँस लेती रही। जिसने एक-एक रुपये को बचाया वो आज बहुत कुछ अपनी बेटी को दे जाएगी।

मेरे कुछ मित्रों ने मुझे छेड़ते हुए पूछा था।

''अब तीसरी आत्मकथा कब आयेगी।'' कुछ तो गंभीर थे कुछ मज़ाकिया मूड में थे। डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना ने पहली बार सुबह बधाई दे कहा। कुछ अच्छा लिखती रही। इसी प्रकार और जो है उसी में खुश रहने की चेष्टा करो। डॉ. सतीश दुबे दूसरे मित्र हैं जिन्होंने दीर्घायु की कामना कर कहा, ''नो डिप्रेशन। किसी भी तरह आनंद अनुभव करो।'' मेरे जैसे उम्रदाँ व्यक्ति पड़ोसियों व शून्य रिश्तों के कारण इस जर्जरित होती संस्कृति के साथ कैसे पल-पल गुज़ारें।

इसी संदर्भ में स्मरण आते हैं कासली वाल जिन्होंने पी.एस.सी. के मेरे सिलेक्शन के बाद पत्र लिखने वाले कासलीवाल अपने सिलेक्शन पर बधाई लें। आप खूब अच्छा लिखती रहें। कासलीवाल जी का मेरे छिन्न-भिन्न जीवन के अकेलेपन में यह कहना। अच्छा लगा, वे बोले थे कुछ दिन हमारे साथ रहें तो आप अकेलेपन से त्रस्त न होंगी। स्मरण आता है जब वो क्षण तो आँखें भिगो देता है। वे खुले मन से अपनत्व से कहते हैं। पी.एस.सी. में सरल प्रश्न पूछ उन्होंने मेरी घबराहट दूर की थी। अब इस तरह मनोबल बढ़ाया। मैं स्वीकारती हूँ कि अच्छी वक्ता मैं नहीं थी। घबराहट नर्वस होना आदतन कमज़ोरी है। पर केजरीवाल व मैडम सीता पँवार के कारण बोलना तो सीखा। वरना हॉस्टल में झूठे आरोपों का भी उत्तर देते नहीं बनता था। महाविद्यालय में मैडम पवार डाँटती तो मैं मूर्खों सी खड़ी रहती। सच तो यह है दोनों व्यक्ति कुछ सिखाते ही रहे। केजरीवाल को अकेलेपन में छात्र कुछ साथ देते पर कभी चोट अधिक करते। वे कैसे भी वस्त्र पहनते, टिफिन खाते व बरांडे में पुस्तकें पढ़ जी लेते संतुष्ट व सुखी रहते। इस उम्र में चिल्लाकर डाँटा भी तो नहीं जा सकता। उनके पास अतुल भंडार था पुस्तकों का। उस दौलत की ही चिंता उन्हें सताती। क्या होगा इनका? कृष्णा जी आप सँभाल लें। पर कृष्णा जी क्या सँभालें। खुद तो सँभलकर जी लें? मन होकर भी कुछ नहीं कर पाई। पर आज सूचना मिली की वो अमूल्य धरोहर विकास दवे ने देव पुत्र पुस्तकालय के अंतर्गत सुरक्षित रख ली। ऐसी घटनाएँ व परिणाम मुझे पूरी तरह बौखला देते हैं। प्रश्नों के बवंडरों से कथासूत्र तो निकलते है। पर जो पीड़ा का दंश मिलता है उसके अंधकार को कोई नहीं नाप पाता। जानती हूँ कि अब चौपाल में बैठकर समय गुज़ारने का समय गुज़र गया। मैं तो खंडवा में भाटिया साहब के घर के पास वाली पुलिया ही पर टाँग हिलाती बैठ जाती। यहाँ तक कि साईंकृपा की वो पुलिया तो मेरे लिए क्लब की कुर्सी से अधिक महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि मेरे वहाँ बैठते ही सामने बगल में सारी महिलाएँ बैठकर चर्चा करने लगतीं। सब एक दूसरे की प्रतीक्षा करते। ऐसा लगता शाम आए व हम उस पुलिया पर भागें। पर विकास की गति बढ़ी। एम आर टैन रोड का निर्माण हो गया और पुलिया सूनी होती गई, बंजारे वहाँ खुले मैदान में ठहरते तो पुलिया की ईंटें उनके चूल्हों का माध्यम बनती व उसकी आड़ में लैटरीन पेशाब की जगह। वहीं धूल मिट्टी व दुर्गंध इतनी बढ़ गई कि वहाँ जाना एक गलती हो गई। सामने रहो तो लोग स्मरण करते हैं वरना कौन आपको याद रखता है इसीलिए आज साईंकृपा से किसी का भी फ़ोन बधाई स्वरूप नहीं आया। खंडवा की अभिन्न मित्र तो प्रारब्धवश छोड़कर ही चली गईं। सुरैया का हँसता चेहरा व मुहब्बत भरी निगाहें आज बधाई नहीं दे रही। क्योंकि वो अपनी ही लापरवाही का शिकार बन गुज़र गई। श्रीमती अग्रवाल की नृशंस हत्या रहस्यमय रही वे खाक में मिल गईं। सिंधु नासिक चली गईं। ऐसे ही ये सब आठ अक्टूबर को स्मरण आ रहे हैं। क्योंकि इंसान कितना भी बड़ा कलाकार या अफसर व रईस हो उसे मित्र जाति तो चाहिए ही।

लीला रूपायन का फ़ोन आया। वे भी 86-87 की हो रही है। कम सुनती हैं। रूपायन साहब 90 वर्ष के हो रहे हैं। दोनों आस-पास एक बड़े पलंग पर पड़े अपने अनजाने अंत की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझ पर उनका स्नेह बरकरार है। एक हफ्ते से लीला याद कर रही है कि कृष्णा का जन्मदिन 8 अक्टूबर को है। और बेहद उत्साह से विश करती हैं। उनके शब्दों के साथ वे मुझे स्मरण आती है कि वे भी साहित्यिक गोष्ठियाँ घर पर ही आयोजित कर अपने जन्मदिन पर संगत का लाभ उठाया करती थीं। चर्चा, पाठ के बाद वे बढ़िया खाने व नाश्तों का बंदोबस्त करती। इस सबकी ज़िम्मेदारी उनकी बहू करती। बहुएँ इतनी अच्छी होती हैं। तो मुझे आंतरिक प्रसन्नता होती है कि किसी परिवार में तो इतनी अच्छी बहू हो परिस्थिति से लड़कर भी सामंजस्य कर दोनों बूढ़े दम्पति यदि साँसें भी ले रहे हैं तो इस बहू के कारण, इसीलिए मैं उसे अच्छी बहू के नाम से संबोधित करती हूँ।

अब लीला का स्वर थका व शिकायत भरा रहता है कि कोई नहीं आता। कारण वे जानती हैं तब इतना दुखी होकर क्या पाएँगी। जब पौधा फूल हरा-भरा जीवंत होता है तब ही तो भंवरे तितली मंडराते हैं। सूखे पत्ते तो झड़ते मिटते ही हैं न। अब वे पार्टी नहीं दे पातीं, बात नहीं कर सकतीं और सुन भी नहीं पातीं। तब तो मेरे जैसा संवेदनशील ही वहाँ जाएगा पर केवल कुछ पल बाद ही मैं उनकी उम्र की बेबसी देख इतनी द्रवित हो जाती हूँ कि भागने की तैयारी में मन बनाने लगती हूँ। यदि ईश्वर है तो वो ले भी जाए पर रुलाकर क्यों। जब ले जाना हो ले जाए शरीर का जर्जरित होना ज़रूरी क्यों? लीला को शायद कभी स्मरण होता होगा कि साहित्यकार आज के समय में बात भी वही सुनेगा जिससे उससे कुछ अपने लाभ की बात निकालेगा अन्यथा वो नहीं सुनेगा। पुरस्कार वाद व सम्मानवाद की होड़ ने उसकी सहृदयता व संवेदना को कुंठित कर दिया इसलिए यदि मैं लाभ नहीं पहुँचाने की स्थिति में हूँ तो बधाई की आशा क्यों करूँ। हाँ, कुछ उन लड़कियों ने बधाई दी जिन्होंने पी.ऍच.डी. पूरी कर ली है और अब कोई स्वार्थ न होने के कारण भूल जाना स्वाभाविक है। बड़े-बड़े महान् लोगों की पुण्य तिथियाँ व जन्मदिन इसलिए मनाते हैं कि संस्थाएँ कुछ करने का बहाना ढूँढ़ती हैं। कुछ स्वयं प्रसिद्धि पाने वाले वहाँ जो अपने नाम की छपास हेतु कुछ बोलते भी हैं। कुछ पुरुष 75 के हुए तो रजत जयंती, स्वर्ण जयंती मनाकर अपने जन्मदिवस की अहमियत घोषित करते ही हैं। उन पर अंक निकलते हैं। कृष्णा तुम अभी इस योग्य नहीं इसलिए चुपचाप एक कप कॉफी पियो। मंजुल की लाई शुगर फ्री मेवे की बर्फी खाओ व शांति संतोष से सो जाओ। कोई तुम्हारा जन्म खास अहमियत नहीं रखता। और अब तो तुम डूबता सूरज हो जिसे महत्त्व नहीं मिलता। भूल जाओ कि तुमने कुछ लिखा। यह स्मरण तो है न कि आज

ही एक बड़े प्रकाशक ने कहा था हमारे बोर्ड ने कहानी-संग्रह लेना छोड़ दिया। दो सम्पादकों के पत्र पड़े हैं कि आपकी कहानी खो गई शीघ्र उसे पुन: भेजें, तो कृष्णा जी लेखक होना बहुत तकलीफ का काम है। जागती आँखों से अपनी ही रचनाओं व संग्रहों की उपेक्षा देखना बेहद असहनीय होता है।

समीक्षा टालते देखना पीड़ाजनक है। सम्पादकों का कड़ा स्वर सालता है। भई कृष्णाजी 115 पुस्तकें आई हैं। समीक्षा हेतु कहाँ रखा गईं। आपकी पुस्तक देखना पड़ेगा। और फिर कभी न देखना। कितनी व्यथा पहुँचाता है। आपके अनाथपन को निर्जन सीढ़ी यूँ ही सामने बहते लोगों की चाटुकारिता कर अपने काम निकालते देखेंगी पर स्वयं तो नदी नहीं बन सकेगी।

अतीत धुँधला होता जाता है। स्वयं पर से गुज़रती प्रत्येक घटना अपने अच्छे-बुरे पदचिह्न छोड़ देती है। मेरे पास अधिकतर कड़ुवे अनुभवों का ही ढेर है। हाँ, बंद झरोखे में जब थोड़ी साँस होती है तो कुछ व्यक्ति मन को गीला कर देते हैं। वो बड़ा सा 10 कमरों का बंगला, उसके पोर्च में खड़ी नीली वाक्समसाल गाड़ी और सुबह शाम मुस्तैदी से सैल्यूट देता अनवर ड्राइवर। अग्निहोत्री जी तीन माह को सहारनपुर गए थे तब भी वो उसी मुस्तैदी से हमें क्लब व कहीं अन्यत्र भी ले जाता था। अग्निहोत्री जी की अनभिज्ञता में मैं बी.ए. व एम.ए. प्रीवियस हिन्दी साहित्य में हिन्दू बनारस यूनिवर्सिटी से पास कर चुकी थी। एम.ए. फाइनल के समय अग्निहोत्री जी मुझे परीक्षा देने से रोकते रहे। लेकिन परीक्षा तिथि पर घबराई मैं जब बंगले से बाहर निकली तो सामने अनवर खड़ा था। उसने तत्काल दरवाजा बंद कर गाड़ी स्टार्ट की। अग्निहोत्री जी ने उसे चेतावनी दी, ''यदि इन्हें लेकर तुम गए तो मैं तुम्हें नौकरी से अलग कर दूँगा।''

शांति से खड़े अहमद ने गाड़ी स्टार्ट की- ''ठीक है कर दीजिएगा। सस्पैंड। अभी तो मेम साहब को लेकर जा रहा हूँ।'' मैं पेपर देकर लौट आई। अग्निहोत्री जी अनवर को सस्पैंड नहीं कर सके। पर वो मेरी परीक्षा समाप्त होते ही स्वयं ही बंगले की ड्यूटी छोड़ गया। हाँ, उसी समय हमारे पास एक चपरासी विशंभर तिवारी था वो अचानक खंडवा दो-तीन साल बाद दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। मैं उसे नहीं पहचानी। परन्तु जब उसने परिचय दिया तो अन्दर बैठा चाय-पानी नाश्ता दिया।

विशंभर पूर्ववत् हाथ जोड़े मेम साहब से प्रार्थना कर रहा था : ''मुझे आप यहीं काम दिलवा दें आप की सेवा ही करता रहूँगा।'' मैं उन परिस्थितियों में उसको भरपूर वेतन का भुगतान करवाने में असमर्थ थी। विशंभर दो-तीन बार आया पर अंत में हाथ जोड़ मैंने क्षमा माँग ली कि वो न आए। क्यों अपना समय बर्बाद करे। वो आँसू लेकर जा तो रहा था पर उसकी आँखों में एक जिज्ञासा तो थी कि आप तो इतने बड़े अफ़सर की पत्नी व इतने बड़े बाप की बेटी हैं। तब मुझे एक छोटी-सी नौकरी तक नहीं दिला सकती?

उसे नहीं पता था कि मैं कितनी शक्तिहीन एवं असहाय महिला थी। वैसे भी मेरी जैसी शक्तिहीन महिला भला कैसे किसे नौकरी हेतु रिकमेंड कर सकती थी या कर सकती हूँ। लेखक या प्रोफेसर का भला सामाजिक वजूद क्या होता है? कारण तो स्पष्ट है कि आज का लेखक पूर्व के लेखकों से बुद्धिजीवी नहीं, अधिक दंभी एवं चालाक है। लेखन कम कुछ लिखकर पैसे खर्च कर स्वयं को लेखक सिद्ध करने का प्रयास है। वे नहीं समझ रहे कि ऐसा करने से भी वे समय के बढ़ते ही रद्दी टोकरी में फेंक दिए जाएँगे। आपसी फूट व योग्यता को नकारने से स्वयं नीचे ही आ रहे हैं। द्रोपदी को महाभारत में भरी सभा में कौरवों ने निर्वस्त्र करने की चेष्टा की थी। आज भी मेरी जैसी अकेली स्त्री को नष्ट करने की चेष्टा कई लेखिकाओं व यहाँ के लगभग सभी साहित्यकारों ने की है। लेखन रूपी कृष्ण ने मुझे बचाया है। ईर्ष्या-स्पर्धा कुछ इस तरह है कि वे सब मेरे लेखन का पूरा परिचय तक नहीं देना चाहते। ये तक छुपाते हैं कि मैंने 50 पुस्तकें लिखी हैं।

अपने इस उपेक्षित व्यवहार से वे क्या मुझे मिटा सकते हैं? यही तो माँ दुर्गा की कृपा है कि लेखन का त्रिशूल हाथ में है और मैं निडरता से लिखती आ रही हूँ।

सबसे अधिक पीड़ा होती है यह समझकर कि महिलाएँ ही अपनी सेक्स के प्रति निर्मम है। हाल ही में सोशल गैदरिंग का मैंने उद्घाटन किया पर छोटी-छोटी खबरें छपती हैं। मेरी न्यूज़ नहीं छपी और बहाने ढेरों। न माफी न क्षमा। उस पर न न्यूज़ देने की न क्षमा, न एक्सक्यूज़। जैसे बुलाकर क्या हमने अहसान नहीं किया अब तुम्हारी न्यूज़ न भी छपी तो क्या बुरा है? महिलाएँ ईर्ष्यालु इतनी होती हैं कि समझती हैं उनके पति इतने महान् हैं कि उनसे कोई भी स्त्री सम्बन्ध बनाने को लालायित रहेगी। विवाहित स्त्रियाँ ईर्ष्यालु हैं।

बाबई के डॉ. भार्गव की पत्नी मंजु ऐसी ही है जबकि ईश्वर जानता है कि मेरे मन में डॉ. साहब के प्रति न कोई आकर्षण था न मोह है। वे मेरे पाठक मात्र थे वे।

ऐसी ही इन्दौर की कुछ लेखिकाएँ हैं जिन्होंने गलत सीढ़ी से पुरस्कार लिए, अपनी पुस्तक कोर्स में लगवाई और अन्य लाभ उठाए। वे मेरी प्रसिद्धि से जल मुझे उपेक्षित करती हैं। पीछे से कटाई करती हैं। व झूठे दोष लगा आरोपित कर अपमान करने की चेष्टा करती हैं। प्रत्येक प्रामाणिक स्थान से मेरा नाम काट मुझे मिटाने का उपक्रम करती हैं। महिलाएँ, पेपर तक तो पढ़ती नहीं उनकी अल्प रूढ़िवाद मन: स्थिति से हम कैसे ताल-मेल बैठाए? अपने अस्तित्व को पुरुषों के सहारे बड़ा करें पर अपनी ही सी अच्छी स्त्रियों को ढकेलकर उनकी छाती पर बैठ उन्हें नोंचकर उनकी अच्छाई व प्रसिद्धि को तो न उखाड़ें।

ऐसे समय में अन्नपूर्णा राय, विमला अग्रवाल, कमला रावत व फैमिदा जैसी महिलाएँ स्मरण रह कुछ तो निराशा धोती हैं। अन्यथा मेरे एक किराएदार हैं जो अपनी रूढ़ियों व आधुनिक वस्त्रों के गर्व पर ही गर्व करती हैं। मैं ऐसी पति के बल पर इठलाती स्त्री पर हँसती हूँ कि क्या हो गया स्त्री को? कभी-कभी ऐसे स्वभाव में भी कुछ व्यक्तियों की यादें हमें कमल के पुष्प सी खिला देते हैं। फैमिदा खान मुस्लिम हैं पर दीदी को भरपूर स्नेह व प्यार देती हैं। घर पहुँचो; कि वे स्वागतरत हो जाती हैं। मक्का गई तो दुआ भरे छुआरे ले आईं, इत्र दे गईं, ऐसे ही कई इने-गिने व्यक्तियों की जन्मदिन पर दी बधाई शायद मुझे जिलाती आ रही है।

वहीं भुनेश्वरी जैसी लड़कियाँ हैं जो पीएच.डी. करने हेतु आस-पास विशेष

रहती हैं। कष्ट के समय साथ खड़ी होती हैं। कुछ डिग्री मिलते ही न जाने किस मोटे पर्दे के पीछे छुप जाती हैं। बिना पारिश्रमिक उनको गाइड करना, सामग्री उपलब्ध कराना, घर पर अतिथि धर्म पालन करो और ये काम निकलते ही हमें मुँह चिढ़ा पूरे परिदृश्य से ही लुप्त हो जाती हैं तब भी बिना प्रतिफल मैं अब भी छात्राओं को मदद करना अपनी नैतिक प्रसन्नता मानती हूँ।

यूँ तो हम सब पुलिस पर विश्वास नहीं करते। और वर्तमान में तो वे लुटेरे ही हैं। लेकिन मुझे एक साधारण से पुलिस वाले का स्मरण है जो हमारे साथ निःस्वार्थ ही रात 1 बजे तक रहा। है भी वो घटना कुछ मज़ेदार। हम अपनी बेटी नीहार और नातिन वैदेही को बम्बई वाली ट्रेन में छोड़ने गए पर बैठा दिया देहली जाने वाली ट्रेन में। गलती पता लगी तो पागलों से लक्ष्मीबाई स्टेशन से उज्जैन तक गए। साथ हमारे था वही एक सिपाही जो हर जगह हमें शीघ्र स्टेशन पार करवा देता। हम निराश उसी के साथ लौटे उसने हमसे कुछ भी रुपये नहीं लिये- ''दीदी मिल जाती तो इनाम माँगते।'' अभी नहीं, वो अजनबी चला गया, रह गई एक सुती हुई याद।

वैसे खंडवा में रहे कोतवाल राजोरिया व इंस्पेक्टर द्विवेदी भी कुछ अच्छे इंसानों में से थे। मेरी चोरी हुई सारी चीज़ें व चोर दोनों ही मशक्कत से पकड़े गए। जानती हूँ। कम लोग ऐसे टकराते हैं पर टकराकर एक आशवादी झंकार तो छोड़ ही जाते हैं।

ऐसे ही एक दिन शाम रामशरण शर्मा ने मेरे घर पर दस्तक दी। वे बहुत बूढ़े थे। काँपते थरथराते वे प्रवेशे। मुझे देख खुश हुए। लेखक व लेखन के प्रति इतनी उमंग। वो भी इतनी आयु में? मैं द्रवित हो गई। चाय नाश्ता दे मैंने सँभाला। उन्हें मेरी पुस्तक चाहिए थी। मैंने बच्चों की एक पुस्तक उन्हें भेंट में दी। बहुत प्रसन्न हो वे वैसे ही लुढ़कते सड़क तक पहुँचे। मैंने उनसे उमंग, आशा व दृढ़ता सीखी। ज़िन्दगी को कोसो मत, जिओ परमानंद को प्राप्त करो, सलीके से उमंग से भर जीवन को प्राप्त करो।

❑❑❑

532 ए-1, महालक्ष्मी नगर, इन्दौर
452010 मप्र मोबाइल 9826065118

ग़ज़ल

इस्मत ज़ैदी 'शिफ़ा'

ए-13, स्टॉफ़ कॉलोनी, यूनिवर्सल केबल्स लिमिटेड, बिरला विकास
सतना 485005 मप्र
मोबाइल 962043603

वो शख़्स जो कि मुझे अश्क्बार करता है
उसी का साथ मुझे बावक़ार करता है
बपा हो एक तलातुम जो सच बयाँ कर दूँ
ज़माना उन प बहुत ऐतबार करता है
न कोई ख़त का ता'ल्लुक़ न आने जाने का
वो सुबह ओ शाम मगर इन्तेज़ार करता है
ख़मोशियों में है इक दास्तान पोशीदा
यही तो वस्फ़ उसे बुर्दबार करता है
ख़ुदी को मार के मक़तल में हिर्स के देखो
वो अपनी लाश का अब इश्तेहार करता है

0000

हथियार तेरे किस को डराने के लिये हैं
हम तो तेरा हर वार बचाने के लिये हैं
हर फूल की क़िस्मत में शिवाला नहीं होता
कुछ फूल जनाज़े प चढ़ाने के लिये हैं
आँसू को सदा ग़म से ही जोड़ा नहीं करते
ख़ुशियों में भी कुछ अश्क बहाने के लिये हैं
लरज़ीदा हैं लब, आँख में आँसू की नमी भी
ख़ुश बाश वो दुनिया को दिखाने के लिये हैं
हर ज़ख़्म की तशहीर ज़रूरी तो नहीं है
सदमे कई इस दिल में छुपाने के लिये हैं
जो आग लगाए है नशेमन में वो तुम हो
हम जैसे 'शिफ़ा' आग बुझाने के लिये हैं

0000

चराग़ ए शब को न हर्गिज़ भला बुरा कहिए
तुनुक मेज़ाज हवाओं को बे वफ़ा कहिए
ये बे नवाई के मौसिम बदल के देखिये अब
घुटी घुटी सी कराहों को मत सदा कहिए
रुसूम ए कोहना की दीवार तोड़ने वाले
नए रिवाज के हामी हैं उन को क्या कहिए
ये ख़ार ओ ख़स हैं हरिक चोट झेल जाएँगे
गुलों की जाँ प बन आएगी, बस दुआ कहिए
अमीर ए शह्र जिसे सुन के भी न सुन पाए
उसे ग़रीब की आवाज़ ए नारेसा कहिए
जो कोई लफ़्ज़ कभी बाइस ए सुकून बने
उसे क़रार भी कहिये, उसे 'शिफ़ा' कहिए

0000

यूँ भी ज़ख़्मों को अपने सिया कीजिए
छोटी छोटी ख़ुशी जी लिया कीजिए
वक़्त के हाथ की सब हैं कठपुतलियाँ
हँस के सारे तमाशे किया कीजिए
ख़्वाब सारे उन आँखों में महफ़ूज़ हैं
बस इसी इक भरम में जिया कीजिए
हाकिम ए वक़्त से है यही इल्तेजा
कम से कम दर्द तो सुन लिया कीजिए
फ़र्ज़ पूरे न कीजे मगर ऐ 'शिफ़ा'
नातवाँ उज्र भी मत दिया कीजिए

0000

राब्ता सियासी है, दोस्ती न समझा जाए
उन के अह्द ओ पैमाँ को, आशिक़ी न समझा जाए
ताजिरान ए दहशत से कुछ भी कह न पाए हम
ख़ौफ़ ए जाँ मुसल्लत था, बेहिसी न समझा जाए
वक़्त बोलने का था, मौत दी ख़मोशी ने
साँस आने जाने को ज़िंदगी न समझा जाए
फ़ुर्सतों की कमयाबी, ज़र्ब है ता'ल्लुक़ पर
एख़्तेसार लफ़्ज़ों का बेरुख़ी न समझा जाए
वो अनापरस्ती में ग़र्क़ कुछ ज़ियादा हैं
कैसे उन के जुम्लों को क़ैसरी न समझा जाए
जो जला दे बस्ती को ऐसा एक शो'ला भी
तीरगी का ज़ामिन है, रौशनी न समझा जाए

0000

हेलो कौन भावना दीदी

समीर यादव

17 जून 2008 की सुबह भेड़ाघाट थाने में लम्हेटा गाँव का कोटवार दो तीन व्यक्तियों के साथ आया और मुंशी जी को लम्हेटा घाट के पास एक लाश मिलने की सूचना देने लगा, सुनकर थाने पर मौजूद थाना प्रभारी टीआई अनिकेत ने उसे अपने कमरे में बुलाया जानकारी ली और मौजूद स्टाफ के साथ मौके के लिए तत्काल रवाना होते हुए, वरिष्ठ अधिकारियों को फ़ोन पर सूचित करते गए।

मौका-ए-वारदात का मुआइना करते हुए थाना प्रभारी टीआई अनिकेत ने अपने अनुभव से यह अंदाज़ लगा लिया कि नर्मदा नदी के इस कम आवाजाही वाले लम्हेटा घाट के आश्रम वाले रोड के किनारे पड़ी हुई लाश अधिक पुरानी नहीं है। औंधे मुँह पड़ी हुई लाश का चेहरा जला हुआ था और सर के पीछे से आगे तक गहरे चोट थे। जिससे बहे खून के छींटे आस-पास के पत्थरों पर भी दिख रहे थे। थोड़ी देर में डीएसपी भी घटनास्थल पर पहुँचे। घटनास्थल की बारीकी से निरीक्षण और निकटवर्ती क्षेत्र के सर्चिंग करने पर भी लाश के आसपास अपराध से सम्बंधित कोई भी साक्ष्य नहीं मिला था। सिवाय वहाँ मौजूद कुछ भौंचक चेहरे, माचिस की कुछ जली और अधजली तीलियों के।

डीएसपी ने धूप के चश्में पर आ गए धूल के कणों को साफ़ करते हुए टीआई से कहा- ''इसकी पहचान होना ज़रूरी है... ब्लाइंड मर्डर में लाश की शिनाख़्तगी हो जाना ही मामले के आधे खुल जाने जैसा होता है।'' ठीक कहते हैं सर..! टीआई ने इत्मीनान के भाव चेहरे पर लाते हुए जवाब दिया। लाश को बारीकी से देखते हुये पंचनामा टीआई के निर्देशन में तैयार किया जा रहा था..... एक अधेड़ उम्र का पुरुष जो करीब 50-55 साल का, गेंहुआ रंग, छरहरा बदन, औसत ऊँचाई..करीब 5.8 फ़ुट, बदन पर सफ़ेद बनियान जो खून और धूल-मिट्टी से लाल मटमैले रंग का हो गया था, नीचे मेरून कलर का पेंट जिसमें काले रंग का पुराना सा बेल्ट बँधा था, शर्ट जो ग्रे कलर का था, बटन खुलकर चेहरा जलाने के उपक्रम में ऊपर का हिस्सा जल गया था, पहने हुआ था। अधजले बालों को देखने से स्पष्ट हो रहा था कि उसे मेहंदी से रंगा जाता रहा है। वो नीचे से सफ़ेद और ऊपर लाली लिये हुए अपनी कहानी ख़ुद बयाँ कर रहे थे।

हालाँकि मौका-ए-वारदात लम्हेटा गाँव से कोई बहुत दूरी पर नहीं था, फ़िर भी यदि आसपास के किसी व्यक्ति की लाश होती तो वहाँ तमाशबीन बने ग्रामीणों में से कोई न कोई, कुछ न कुछ पहचान का सूत्र दे देता। लाश और मौका-ए-वारदात पर ऐसे कोई निशानात भी नहीं थे, जिससे इस संदेह को बल मिलता कि हत्या कहीं और की जाकर लाश यहाँ डाल दी गई हो। हाँ..! वहाँ पर किसी गाड़ी के टायर मार्क्स भी नज़र नहीं आ रहे थे। जो इस बात को संदेह के घेरे में लाते। पंचायतनामा के साथ-साथ पहचान की कार्यवाही भी जारी रखी गई। जैसे पुलिस ने वहाँ पर अघोषित मुनादी करा दी थी कि जो कोई भी इस लाश के बारे जो कुछ भी जानता है बताने का कष्ट करें। डीएसपी ने नज़दीक पहुँचकर अज्ञात व्यक्ति के पंचनामा में विशेष सावधानी बरतने की हिदायत दी। फिर कहा -शर्ट, पेंट, अंडरवियर की और बारीकी से तलाशी ली जाए। तलाशी में शर्ट की जेब से जले हुए कागज़ों के टुकड़े मिले, वही पेंट की जेब से कुछ सिक्के और करीब 100/- रुपये के कुछ करेंसी नोट मिले। पहचान के लिए कोई नाम, टेलीफ़ोन नंबर, मोबाइल हैण्ड सेट नहीं मिल सका। शर्ट का उपरी हिस्सा जल जाने के कारण पेंट का टेलर मार्क (आजकल निर्माता कंपनी का लेबल) महत्त्वपूर्ण हो गया, उसे ध्यान से देखा गया। संयोग से पेंट में किसी स्थानीय निर्माता कंपनी ''श्याम ट्रेडर्स'' का लेबल लगा हुआ था। इसके बाद शरीर को भी बारीकी से देखने पर टेटू (गोदना), पुरानी चोट का निशान, टीका, तिल या चेचक के दाग या निशान (स्कार मार्क्स) जैसे पहचान के सूत्र नहीं दिखे। सो पंचनामा में इन्हीं बातों का उल्लेख करते हुए, पहले डिस्ट्रिक्ट क्राइम ब्रांच और फ़िर शाम को निकलने वाले सारे अखबार और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को जानकारी दी गई। जो थोड़ी देर बाद शहर और आसपास की सुर्खी भी बन गई।

डीएसपी ने टीआई, फॉरेंसिक साइंस लैब के विशेषज्ञों और कुछ वरिष्ठ पुलिस स्टॉफ़ के साथ मशविरा कर विवेचना के लिए कुछ बिन्दु तय किए।

लाश को पोस्टमार्टम के बाद मेडिकल कॉलेज जबलपुर के वातानुकूलित मरचुरी में शिनाख़्तगी तक के लिए सुरक्षित रखा गया। शाम करीब 6.30 बजे टीआई के पास गढ़ा निवासी रमेश पाण्डेय नाम के आदमी का फ़ोन आया और उसने लाश के हुलिया के सम्बन्ध में जानकारी लेते हुए, विशेष रूप से उसके पहने पेंट के टेलर मार्क्स के सम्बन्ध में पूछा फिर उसे देखने की इच्छा व्यक्त की। थोड़ी देर में ही रमेश पाण्डेय कुछ लोगों को साथ लेकर लाश देखने मरचुरी में आया। जैसे ही लाश पर से कपड़ा हटाया गया दूर से ही भावना पाण्डेय ''....ये तो पापा हैं.....'' कहकर चीख पड़ी।

वो लाश जबलपुर के घने बसे रहवासी क्षेत्र गढ़ा में लाल हवेली के मशहूर मालगुज़ार ओंकार प्रसाद शुक्ला की थी। शिनाख़्तगी के बाद हत्या का रहस्य और गहराने लगा ! शिनाख़्तगी तय होते ही

वहाँ मौजूद डीएसपी और टीआई तुंरत एक कोने में जाकर गुफ़्तगू करने लगे... !!!

गढ़ा जबलपुर का मशहूर ''लाल हवेली'' भेड़ाघाट-लम्हेटा घाट से लगभग 25 किलोमीटर दूरी पर है और वहाँ का मालगुज़ार ओंकार प्रसाद शुक्ला एक संपन्न परिवार का मुखिया था। उसकी ऐसे निर्जन स्थान पर निर्मम हत्या !!! मामले में हत्या और इसके तरीके के पीछे जितने भी सम्भव कारण...या सूत्र हो सकते थे बिना देरी किए पुलिस ने सोचना, जोड़ना और जुटाना शुरू किया।

मृतक ओंकार प्रसाद शुक्ला का एक भरा पूरा परिवार था। जिसमें गृहिणी पत्नी के अलावा दो पुत्रियाँ दोनों विवाहित। उनमें से एक घटना के कुछ दिनों ही पूर्व मायके माँ-पिता से मिलने आई थी। ओंकार प्रसाद शुक्ला मालगुज़ारी का काफी ज़मीन जायदाद होने के साथ, बहुत समय से प्रोपर्टी डीलिंग बिजिनेस में भी था। एक पुरानी लेकिन मेन्टेन फियेट कार और उस पर एक अदद ड्राइवर अजय बवेले था। घर में लैंड लाइन टेलीफ़ोन के अलावा एक सेल फ़ोन भी व्यक्तिगत उपयोग के लिए ले रखा था। घर से ही अपने कारोबार का ऑफिसनुमा कार्य कुछ विश्वसनीय पुराने मुलाज़िमों के माध्यम से चलाता था। अभी तक आई इस तरह की जानकारी को एनालिसिस की भट्टी में चढ़ाए, लाल हवेली में खड़ी पुलिस कुछ और सूत्रों की प्रतीक्षा में वहीं तैनात आने जाने वालों से बातचीत करती रही।

इस समय तक ओंकार प्रसाद शुक्ला के स्थानीय परिजन एवं कारोबारी नज़दीकी लोग मातमपुरसी के लिए घर पर आने लगे थे। पुलिस से अनौपचारिक बातचीत में घर वालों ने बताया कि मृतक ओंकार का अपने सगे छोटे भाई सनत शुक्ला से संपत्ति सम्बन्धी पुराना विवाद कई मामलों-मुकदमों के साथ अदालत में चल रहा है....और इसीलिए उनके परिवार का आपस में किसी भी सुख-दु:ख में आना-जाना भी नहीं है। इसके अलावा अन्य किसी व्यक्ति से विवाद या कोई खास बात-अदावत न कभी बताई गई, न ही उनकी जानकारी में अब तक आई है। अधिकांश परिजनों एवं करीबियों ने इस बात को तसदीक भी किया।

16 जून को भी ओंकार प्रसाद शुक्ला अपने सामान्य दिनचर्या के मुताबिक सुबह उठे, तैयार होकर हल्का-फुल्का नाश्ता किया और अखबार पढ़ते-पढ़ते ड्राइवर का इंतजार करने लगे। तभी उसके मोबाइल पर एक कॉल आया कि ''गौतम जी के मढ़िया के पास केशरवानी होटल पर आओ, एक ज़मीन देखने चलना है।'' मिलने के लिए बताया गया स्थान इतना नज़दीक था कि मालगुज़ार घर से पैदल ही चले गए। घरवालों ने भी इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया, क्योंकि कभी कभार ड्राइवर के लेट होने पर मालगुज़ार स्वयं काम पर निकल जाते और ज़रूरत पड़ने पर उसे फ़ोन करके अपने पास बुला लेते थे। लेकिन सुबह आने वाला वह फ़ोन किसका था, यह अब भी कोई नहीं जानता था....जिसका कॉल उसे आख़िरी बार घर से निकाल ले गया था।

घरवालों और सभी मुलाज़िमों के बयानों में कोई खास बात समझ में नहीं आई, सिवाय ओमकार प्रसाद की बड़ी बेटी भावना पाण्डेय के बयान में यह बताना कि....''16 तारीख को पापा ने उसके मोबाइल पर एक बार सुबह ज़मीन देखने जाने की बात बताई, फ़िर दो बार ड्राइवर के आने पर मोबाइल से बात करने के लिए कहा और आख़िरी बार शायद शाम को... ज़मीन देखने के कारोबारी सिलसिले में पाटन में होने और देर से घर लौटने की जानकारी देने के लिए फ़ोन किया था।''

ड्राइवर अजय बवेले ने बताया कि घर में काम की वज़ह से देरी हो जाने के कारण, करीब 12 बजे उसने फ़ोन पर मालिक मालगुज़ार से बात की तो मालगुज़ार ने उससे कहा था कि- ''ठीक है, मैं ज़मीन देखने जा रहा हूँ, तुमको कहाँ आना है.... थोड़ी देर से बताता हूँ।'' मुलाज़िम चिंटू उर्फ़ अमित ठाकुर जो 17 जून की शाम से मृतक ओंकार के घर पर मौजूद था, ने बयान दिया ''उसका कोई भी काम होता था तो सेठ जी (मालगुजार) एक रात पहले या सुबह से फ़ोन करके बता देते थे, कि वह आकर मिल ले या फलाँ काम कर ले लेकिन कल कोई बात ही नहीं हुई।'' वह तो दोपहर तक तो अपने घर पर ही था। वैसे भी उसका मोबाइल फ़ोन आजकल रिचार्ज नहीं हो पाने के कारण बंद पड़ा है। और.....वह शाम को जैसे ही मालगुज़ार के बारे में सुना तुंरत घर चला आया। डीएसपी ध्यान से इन बातों को सुनते रहे ...बयान लिखने और विडियो रिकॉर्डिंग करने के अलावा भी वो अपनी डायरी में अलग से कुछ-कुछ नोट करते जा रहे थे।

जानकारी में आए इन तथ्यों की तत्काल पुष्टि प्राथमिकता में था इसलिए क्रमश: ..... केशरवानी होटल के पास ओंकार प्रसाद के पहुँचने और वहाँ किसी से मिलने, पाटन में ओंकार प्रसाद से व्यक्तिगत एवं कारोबारी रूप से जुड़े सभी लोगों की तसदीक कर ली गई। लेकिन किसी ने भी मालगुज़ार के पाटन आने, जाने, मिलने या देखने की जानकारी होने की बात में हामी नहीं भरी। डीएसपी ने शांत भाव से इन सभी लोगों के सेल नंबर नोट किए और अपने एक कांस्टेबल रीडर को बुलाकर कुछ मोबाइल नम्बर को अलग... से नोट कराने लगे... कॉल डिटेल्स रिपोर्ट मँगाने के लिए।

अभी विवेचना की कोई एक दिशा तय करना मुमकिन नहीं था...इसलिए पुलिस हत्या के पीछे कारणों में .... मृतक ओंकार प्रसाद शुक्ला का अपने सगे भाई सनत शुक्ला से चला आ रहा विवाद, अन्य किसी प्रोपर्टी डीलर से छुपा हुआ कोई विवाद, फिरौती के लिए अपहरण-हत्या, अवैध सम्बन्ध, कोई अंदरूनी पारिवारिक कलह, संपत्ति सम्बन्धी विवाद, अन्य कोई तात्कालिक कारण या फ़िर सुपारी हत्या, घटना से जुड़े साक्ष्य ढूँढ़ रही थी। लेकिन इसके साथ भेडाघाट पुलिस डीएसपी के नेतृत्व में कुछ और कोणों पर भी सोच रही थी।

दूसरे दिन याने 18 जून को सुबह पोस्टमार्टम की रिपोर्ट आ गई, जिसमें चेहरे पर पेट्रोल जैसी ज्वलनशील पदार्थ डालकर जलाने और नुकीले, भोथरे हथियार से सर के पीछे और चेहरे पर गहरे जख़्म पहुँचाकर हत्या किया जाना लेख किया गया था। मृत्यु का कारण अधिक रक्तस्त्राव होना और शॉक को बताया गया था, जबकि समय 24 से 36 घंटे के पूर्व होना निश्चित किया गया था।

उधर मोबाइल नेटवर्क कंपनियों की मेहरबानियों से कॉल डिटेल्स रिपोर्ट लेकर कांस्टेबल उम्मीद से पहले ही डीएसपी के

समक्ष उपस्थित हो गया। डीएसपी ने उसे शाबास कहते हुए अभी तक लिए गए बयानों को एक बार फिर गंभीरता से पढ़ा। वे बयान जिसमें खास तौर से मृतक ओंकार प्रसाद शुक्ला के जानने वालों ने सनत शुक्ला की तरफ़ उँगली स्पष्ट रूप से उठाई थी। और फ़िर अपनी नोटिंग डायरी की कुछ ख़ास पेजेस को खोलकर, लैपटॉप पर तरतीबवार विश्लेषण आरम्भ किया।

सबसे पहले ओंकार प्रसाद शुक्ला के सेल नंबर के CDR एनालिसिस शुरू करते ही उनकी नज़रें सुबह 9.13 बजे के इनकमिंग कॉल पर जाकर टिक गईं, जिसके आने पर मालगुज़ार बगैर ड्राइवर की प्रतीक्षा किए ही पैदल घर से निकल पड़ा था। इस नंबर के डिटेल्स नोट कर डीएसपी ने हेड कांस्टेबल शिवनाथ को उस नंबर के सिम कार्ड धारक व्यक्ति को फ़ौरन पता करने के टास्क पर लगा दिया। उसके बाद CDR एनालिसिस के अनुसार मृतक के मोबाइल से बेटी भावना एवं ड्राइवर अजय बवेले से हुए बातचीत की बताए गए समय अनुसार पुष्टि हो रही थी...... लेकिन लोकेशन वाला कालम कुछ अलग वंशी बजा रहा था। यह ध्यान देने का बिन्दु तो था..... किंतु मोबाइल के टावर्स के दूरी मेजरमेंट की इतनी एडवांस तकनीक डीएसपी के पास नहीं थी और अनुसंधान में अभी तक आए साक्ष्य भी इतने पर्याप्त नहीं थे कि शक की बिनाह वाली थ्योरी पर काम करना शुरू कर दिया जाता। थोड़ी देर बाद हेड कांस्टेबल शिवनाथ ने फ़ोन से बताया कि सुबह 9.13 बजे कॉल वाले मोबाइल नंबर के सिम कार्ड होल्डर राजेश का एड्रेस पाटन है और मालगुज़ार का ड्राइवर अजय बवेले दो राजेश को जानना बताता है जिनमें एक पाटन का और दूसरा गढ़ा का ही है। उधर टी आई भेड़ाघाट ने जानकारी दी कि ओंकार शुक्ला की बेटी भावना डीएसपी साहब से कुछ बात करना चाहती है..!!

डीएसपी स्वयं टीआई को लेकर देर शाम मालगुज़ार के घर पहुँचे। वहाँ मृतक के परिजनों ने सनत शुक्ला के व्यवहार और हरकतों के सम्बन्ध में खूब विस्तार से जानकारी दी। साथ ही घटना के लिए अप्रत्यक्ष रूप से उस पर संदेह भी जाहिर किया। इसी बीच हेड कांस्टेबल शिवनाथ दोनों राजेश को लेकर वहीं पहुँच गया। दोनों राजेश के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं; जिसे देख रात के करीब 9 बजे का समय दिन के 12 जैसा लग रहा था। आख़िर उनके चेहरे पर हवाइयाँ किस कारण से थीं....डीएसपी समझ रहे थे।

पाटन नामक कस्बे में रहने वाले राजेश ने बताया कि वह मालगुज़ार मृतक ओंकार और उसके ड्राइवर अजय बवेले को जानता है लेकिन यह मोबाइल नंबर उसका नहीं है। वह तो दूसरा नंबर उपयोग करता है। जो अभी भी उसके पास है, चाहे तो चेक कर लें। दूसरी और गढ़ा में निवास करने वाले राजेश ने बताया कि वह केवल ड्राइवर अजय बवेले को जानता है, क्योंकि वह पान मसाला खाने के लिए आता है तो कभी कभार पान दुकान पर उसकी बात - मुलाकात हो जाती है। गढ़ा में ही काफी समय से रहने की वजह से वह मालगुज़ार को नाम और चेहरे से पहचानता ज़रूर है लेकिन उससे कभी कोई बातचीत नहीं हुई है। सेल नंबर के बारे में पूछने पर उसने बताया कि करीब 2 महीने पहले उसे मोहल्ले के ही अशोक नाम के सिम बेचने वाले ने यह सिम उसे 200/- रुपये में बिना कागज़ात के दी थी। जो बाद में उसने चिंटू को दे दिया..! इस पर डीएसपी ने लगभग चौंकते हुए पूछा कौन चिंटू..??? तो उसने चेहरे पर बिना कोई भाव लाए जवाब दिया- साहब ! चिंटू......याने यही अपना अमित जो गढ़ा में रहता है। इसी बीच भावना पाण्डेय सूजी हुई आँखे पोंछते हुए उसी कमरे में आई, जहाँ गवाह राजेश द्वय से पूछताछ चल रही थी......और भावावेश में बिना भूमिका के कहने लगी.....क्या बताऊँ सर! मेरे ध्यान से एक बात उतर गई थी... जब 16 जून की शाम लगभग 6.55 बजे मेरे मोबाइल की घंटी बजी तो मैंने फ़ोन अटेंड करने के लिए जैसे ही नंबर देखा ....वह पापा का कॉल था। लेकिन फ़ोन रिसीव करते ही उधर से आवाज़ आई .....हेलो...! कौन ..? भावना दीदी..!! यह सुनकर वह कुछ समझ नहीं पाई और बोली ....कौन..? कुछ देर ख़ामोशी के बाद मैंने अंदाज़न कहा - चिंटू तुम...!! जवाब में उधर से बीच में ही थोड़ी लरजती लेकिन कड़क सी आवाज़ आई ...अरे नहीं नहीं ..!!! मैं तो पाटन से बोल रहा हूँ। तुम्हारे पिताजी को ज़मीन दिखाने लाया हूँ..... लो अपने पिताजी से बात करो। थोड़ी देर बाद पापा ने फ़ोन पर आकर बताया कि वह ज़मीन देखने के लिए पाटन में है, वापस आने में लेट हो जाएँगे। पूरी बात को ध्यान से सुन रही पुलिस टीम में इस बार चौंकने की बारी टीआई की थी......उसने भावना से पूछा ....कौन चिंटू ?? भावना ने आश्चर्य भाव से बताया ...सर ! यही अपना मुलाज़िम अमित ठाकुर।

यहाँ प्रकरण फिर एक नए मोड़ पर आकर खड़ी हो गई......सनत शुक्ला...? राजेश...पाटन वाला ?? राजेश...गढ़ावाला ??? और फिर चिंटू उर्फ़ अमित ठाकुर ???? अशोक सिमवाला, भावना पाण्डेय, केशरवानी होटलवाला या फ़िर कोई और ? क्या देर रात को मालगुज़ार के घर बैठे डीएसपी जैसे इन कड़ियों को जोड़ने में अभी भी लगे हुए थे.......उसी तरह आप भी लगे हुए हैं......!! या फ़िर आप किसी निष्कर्ष पर ही पहुँच गए....!!!

मैं तो डीएसपी साहब के साथ हूँ, जो सूत्रों को करीने से जोड़कर ठोस तरीके से मामले की तह में पहुँचाना चाहते हैं और उसके पहले कुछ बताना...??? भी नहीं चाहते। यह जानने के लिए......कि आख़िर लाल हवेली के मालगुज़ार ओंकार प्रसाद शुक्ला के रहस्यमय हत्या का सूत्रधार, ज़िम्मेदार और हत्यारा कौन ???? पुलिस ने विवेचना में आगे क्या किया।

इन सभी संदिग्धों से अब पुलिस ने पूछताछ की टीम बनाकर सिलसिलेवार पूछताछ करना शुरू किया....सनत शुक्ला, राजेश पाटन वाला, राजेश गढ़ा वाला, अजय बवेले, और कुछ गढ़ा के लड़के। पूछताछ करने वाली टीम जल्दी ही निराश होने लगी...'' सर ! इस तरह से तो कुछ नहीं हासिल होने वाला है, ये लोग शातिर बदमाश हैं और इनसे केवल पूछताछ .....इनका हौसला बढ़ा रही है....और हमारा....?'' नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है ....टी आई साहब ...थोड़ा हौसला आप भी रखिए ....किसी भी आदमी को दोषी होने के बाद लगातार निगरानी में रखकर बातचीत करने से क्लूस ज़रूर मिलते हैं....!! मैं थोड़ी देर में आपको अपने ऑब्ज़रवेशन का नतीजा बताता हूँ। डीएसपी ने विवेचना में

लगे स्क्वाड का धैर्य बनाए रखने के लिए पूरे जोश के साथ समझाने की जुगत की। अपने विडियो रिकॉर्डिंग और मुखबिर से बात करने के थोड़ी देर बाद थाने की तरफ़ अपनी गाड़ी मोड़ते हुए, टी आई को वायरलेस सेट से पूछा...लोकेशन प्लीज़..! सर थाने पर...! टी आई ने ''कैरी ऑन'' की औपचारिकता को छोड़....तत्काल जवाब दिया। और चिंटू कहाँ हैं...? सर वह भी थाने पर ही मौजूद है.. ओके....मैं भी थाने आ रहा हूँ ओके, रॉजर सर..! टी आई ने सेट पर जवाब देकर ड्यूटी ऑफिसर से दो बढ़िया कम शक्कर की चाय लाने के लिए कहा।

टी आई साहब आपने सबसे इन्डिविजुअली बात कर ली ! जी सर..अब तक तो कई बार .! ..क्या कहना है आपका..! सर, मैं तो अब आपके आदेश का इंतज़ार कर रहा हूँ। टी आई जैसे रटे हुए संवाद बोल रहे थे। डीएसपी ने कहा तो ठीक है एक बन्दे को लेकर आइए...यहीं पर.....!!! किसे सर...? .वही....हैलो कौन भावना दीदी वाले को...!!! किसको सर....समझा नहीं...? अमित ठाकुर को..... डीएसपी चमकती आँखों को ऊपर उठाते हुए अपनी उँगलियों में फँसे पेपरवेट को टेबल ग्लास पर घुमाते हुए उसका संतुलन साधने की कोशिश करने लगे।

चिंटू उर्फ़ अमित ठाकुर को पूछताछ के लिए पहले ही थाने बुला लिया गया था....जो अभी तक इंटेरोगेशन में पूछे जा रहे..... उसके मालगुज़ार से सम्बन्ध, घटना के दिन उसकी उपस्थिति, अन्य गतिविधियाँ और कार्य के बारे सभी सवालों के जवाब बड़े इत्मीनान और गंभीरता से दे रहा था।

डीएसपी ने टी आई को इशारा किया कि अब चिंटू पर कुछ नज़रे इनायत की जाए.... थोडी सी नफ़ासत भरी सख़्ती और अकाट्य तथ्यों के झंझावात के बीच चिंटू ने कुछ देर... न, नहीं, मुझे याद नहीं, मैं नहीं जानता, मुझे मालूम नहीं के सहारे अपना वजूद बनाए रखा....लेकिन खिलाफ होते माहौल में और अधिक देर तक टिक नहीं सका !......सूखी आँखों से आसमान की ओर निगाह करते हुए कहा....'' क्या करता सर ! ..इसके सिवा मेरे पास कोई रास्ता भी नहीं था।''

अमित ठाकुर उर्फ़ चिंटू जो कि तीन साल पहले ड्राइवर की हैसियत से मालगुज़ार ओंकार प्रसाद शुक्ला के संपर्क में आया...अपनी दक्षता, कौशल और विश्वास जीतने की कला से धीरे-धीरे पहले मुलाज़िम फ़िर मालगुज़ार के कई व्यवसायिक के साथ निजी कामकाज का राज़दार हो गया। ओंकार प्रसाद भी उसके काम और निष्ठा को देखते हुए उसके हैसियत से ज़्यादा सम्मान देने लगा। इन्हीं बातों से चिंटू ख़ुद को एक राज़दार मुलाज़िम से कहीं आगे मालगुज़ार का पार्टनर समझने लगा। इस बीच होने वाले सभी सौदों में वह ख़ुद का हिस्सा मन ही मन जोड़ने लगा। कुछ सौदों में उसने मालगुज़ार से अपने लिए हिस्सा देना भी कबूलवा लिया। लेकिन ओंकार प्रसाद शुक्ला की कई आदतें मालगुज़ारी से उपजी हुईं थीं...... पगार समय पर नहीं देना, हिस्से के बस वादे करना, काम लेते हुए तारीफ़ करना और गुस्से में सब कुछ उतार देना, शराबनोशी, इस उम्र में भी नीयत ख़राब होने की कमज़ोरी... जा नहीं रही थीं। धीरे-धीरे चिंटू मालगुज़ार से बेज़ार होने लगा और फ़िर एक दिन उसने फैसला कर लिया कि.... इतनी मेहनत और समय जो उसने लगाया है, उसका जीवन के गणित में कोई तो हिसाब होता होगा.....ये तो करना पड़ेगा...!!!

अपने साथियों के मिलकर उसने योजना बनाई कि पहले मालगुज़ार को फ़ोन करके ज़मीन देखने बुलाएँगे और धमका कर पैसे वसूल लेंगे...नहीं मानने पर मौका भाँप कर काम करेंगे। इसी योजना के तहत उसने 16 जून की सुबह 9.13 बजे राजेश गढ़ा वाले से मिले सिम से मालगुज़ार को फ़ोन किया। मालगुज़ार के नियत स्थान केशरवानी होटल पहुँचने पर अपने साथी....मोनू उम्र 18 वर्ष निवासी गढ़ा मोहल्ला, भोलू उर्फ़ सचिन उम्र 19 वर्ष निवासी दशरथ नगर के साथ उसे ज़मीन दिखाने के बहाने अपने घर में लाकर एक कमरे में बिठा लिया। घर वालों को समझा दिया कि ज़मीन के एक बड़े सौदे की बातचीत चल रही है...तुम लोग डिस्टर्ब नहीं करना।

पहले इधर-उधर की बातों में लगाए रखने के बाद चिंटू दोपहर तक कहीं मुद्दे पर आया.....तो बात समझते ही मालगुज़ार भी उसे बातों में ही उलझाए रखकर अपने बच निकलने का रास्ता तलाशने लगा... इस शह और मात के खेल में दोनों का समय निकलता रहा। फिर शाम को करीब 6.55 बजे चिंटू ने अपने साथियों से मशविरा किए बगैर मालगुज़ार के अभी तक घर से बाहर रहने का कारण बताते हुए, ख़ैरियत देने के साथ, थोड़े और समय की मोहलत पाने के लिए ......मालगुज़ार के घर पर उसकी बड़ी बेटी भावना पाण्डेय के फ़ोन नंबर पर कॉल किया। फ़ोन रिसीव करने पर अक्सर बातचीत की शुरूआत में होने वाले .....हेलो ! कौन..? भावना दीदी...!!! बोलकर ओंकार प्रसाद शुक्ला से ज़मीन के सौदे के सिलसिले में पाटन में होने और थोड़ी देर से आने की जानकारी दिलवाने की कोशिश की। उसे नहीं मालूम था कि ये ''तीन शब्द'' ही उसकी सटीक योजना में सेंध लगाने के लिए काफी होंगे।

रात लगभग 10.00 बजे तक सौदा, वसूली, फिरौती ...की बात तय नहीं होने पर, तीनों साथी मिलकर मालगुज़ार को बीयर पिलाकर एक ही स्कूटर की बीच वाली सीट पर बिठाकर भेड़ाघाट के निर्जन लम्हेटाघाट के किनारे ले गए ...वहाँ भी हिस्सेदारी के बकाया रुपये पाने के लिए खूब ज़ोर मशक्कत की...लेकिन कुछ नतीजा न निकलते देख रात करीब 2.30 बजे ......वहीं पड़े पत्थर, स्कूटर में रखे राड से सर पर मारकर मालगुज़ार को पहले अधमरा कर दिया फिर उसका चेहरा विकृत कर पहचान छुपाने के लिए स्कूटर के पेट्रोल से गमछा भिगाकर जला दिया।

तीसरी चाय का कप ख़त्म करते हुए डीएसपी ने टी आई से कहा - रात में ख़ासतौर इसका ख़्याल रखें.... ये न तो अपनी, न मालगुज़ार ओंकार प्रसाद शुक्ला की, न ही अपने कम उम्र साथियों की पहचान पुलिस की निगाहों से छुपा पाया..... बल्कि उम्र के 24 वें साल में ही... मालगुज़ार के अधजले चेहरे की तरह अपने साथ दो और नादान साथियों का आशियाना ज़रूर जला बैठा है।

❑❑❑

एफ़ 8/ 5, चार इमली, भोपाल, मप्र, 462016, मोबाइल 9425162741

सिनेमा एक कला और तकनीक

कृष्णकांत पंड्या

(कृष्णकांत पंड्या एक जाने-माने फिल्म निर्देशक हैं, जिन्होंने पूर्व में इस्माइल श्राफ के साथ सहायक निर्देशक के रूप में थोड़ी सी बेवफाई, आहिस्ता-आहिस्ता, दिल आख़िर दिल है, झूठा सच, लव 86 जैसी फिल्में कीं। फिल्म हत्या के एसोसिएट निर्देशक रहे और सूर्या फिल्म के चीफ एसोसिएट निर्देशक रहे। निर्देशक के रूप में उन्होंने पनाह और बेदर्दी जैसी फिल्मों का निर्देशन किया। इसके अलावा उन्होंने कई टीवी सीरियल्स का भी निर्देशन किया जिनमें रानी पद्मिनी, पृथ्वीराज, श्रीकृष्णा आदि धारावाहिक प्रमुख हैं। वे अभी भी फिल्मों में सक्रिय हैं तथा उनकी निर्देशित की हुई दो फिल्में शीघ्र रिलीज़ होने वाली हैं। शिवना साहित्यिकी के पाठकों के लिये वे धारावाहिक रूप से फिल्मों में लिखने की प्रक्रिया, स्क्रिप्ट, संवाद आदि के बारे में जानकारी देंगे, जिससे लेखकों को फिल्मों के लेखन के बारे में जानकारी मिल सके।)

पिछले अंक के लेख में मैंने फिल्म निर्माण का मोटा-मोटा प्रारूप बताया था अब मैं समग्रता से आपको जानकारी दूँगा प्रमुख है लेखन-

फिल्म के लिए कहानी वैसे तो कोई भी हो सकती है, पर हमेशा इस बात को ध्यान में रखना होता है कि ये एक मनोरंजन का माध्यम है और युवाओं के लिए; ज़्यादा परिवार व प्रौढ़ तब आते हैं देखने जब बड़े अभिनेता हों, तथाकथित साफ-सुथरी और मनोरंजन पूर्ण फिल्म हो उसमें अतिरंजना भी न हो। अब भी ज़्यादातर बड़ी सफलता उन्हीं फिल्मों को मिलती है, जो एक भरपूर, परिपूर्ण व विविध स्वाद वाली भारतीय भोजन की थाली जैसी हो। वैसे कभी-कभार, पास्ता, पिज़्ज़ा जैसी फास्ट फूड सी फिल्में भी चल जाती हैं पर...। गैंग्स ऑफ वासैपुर एक नया व अनूठा प्रयोग है। एक कड़क व डार्क फिल्म है और वास्तविक प्रस्तुतिकरण है, जबकि दबंग की सीरीज़ एक स्वादिष्ट मनोरंजन है। अब अगर सीरीज़ एक जैसी जब होने लगेगी तो उबाऊ हो जाएगी। यहाँ लेखक, कहानीकार, संवाद लेखक और पटकथा लेखक की स्मार्टनेस काम आती है कि अब कहानी क्या हो कि दबंगाई नज़र आए पर पहले से अलग। संवाद कैसे हों जो ''थप्पड़ से डर नहीं लगता साब, प्यार से लगता है?'' या छेद वाला संवाद; अब अगली दबंग में भी ये संवाद भी हो सकते हैं, सटीक जगह पर और नए संवाद तो चाहिए ही। अब हम देखते हैं कि, ऊपर वाले दोनों संवादों के भाव बड़ी आसान भाषा में व्यक्त किए जा सकते थे पर इनमें शुद्ध नयापन है, अन्दाज़ है, जगह है और पेश करने वाले पॉप्युलर कलाकार है।

तो सबसे पहले अगर कॉन्सेप्ट अच्छा लगता है तो उस पर कहानी बनाई जाती है। कहानी में मुख्य किरदार होते हैं जिनके थ्रू एक निश्चित शुरूआत होती है, कहानी का अपना मिजाज़ होता है। वातावरण होता है, भावनाएँ होती है और घटनाओं के साथ वांछित अंत तैयार किया जाता है; जैसे कि, फिल्म विकी डोनर का कॉन्सेप्ट ही बनाया जाय... जिनके बच्चे नहीं होते वो स्पर्म लेना चाहते हैं साथ ही उनको यह नहीं जानना है कि किसका है पर, उन्हें रोगरहित और स्वस्थ स्पर्म चाहिए। एक स्पर्म बैंकर है और कहानी का हीरो है, जिसे बैंकर पटाकर लालच देकर स्पर्म लेना चाहता है, बार-बार लगातार। उसकी प्रेमिका है। उसके माता-पिता हैं, और जब शादी होगी तब इस डोनर हीरो की ज़िन्दगी में कई सवाल पैदा होंगे, जिनका निपटारा फिल्म का अन्त होगा....।

अब अगर मेरे पास या किसी भी फिल्म निर्माता के पास इस कॉन्सेप्ट को लेकर कोई भी आता है, तो इसके नएपन को बिल्कुल पसन्द तो किया जाएगा पर फिर इस कॉन्सेप्ट के प्रज़ेन्टेशन के लिए व इस पर फिल्म बनाने के लिए कई सवाल पैदा होंगे। सवाल इसलिए कि अगर ग़लत तरीके से बना ली, तो ये छिछोरी वल्गर और फूहड़ फिल्म बन जाएगी, जैसी की सेक्स फिल्म्स होती हैं और अगर सीरीयस फिल्म बनाई जाए तो शैक्षणिक फिल्म बन जाएगी। अब क्योंकि, इसके बारे में जैसे ही विचार आएगा तो पहली प्रतिक्रिया में एक मुस्कराहट सब के चेहरों पर ज़रूर आएगी, आपको भी आई ही होगा, जब उपरोक्त पंक्तियों को आप पढ़ रहे हैं तब, या जिन्होंने इसका रिव्यू, ऐड या इस फिल्म के बारे जब भी पहली बार पता चला होगा तब; सही है ना? इसकी कहानी को व फिल्म को हास्य रस का पुट दिया गया, फिर इसमें सारे पात्र व घटनाएँ ऐसी रची गईं कि आप मन्द-मन्द व खुलकर मुस्कुराते हैं। क्योंकि, ये एक आदर्श सामाजिक सुझाव है और विज्ञान की सफल स्वीकृति है, तब इसमें नायिका की गर्भ धारण न कर पाने की समस्या से आदर्श अन्त बनाया गया। फिल्म के अन्तिम सीन में विकी ने जिन-जिन कपल्स को अपने स्पर्म डोनेट किये थे, उन्हें उनके बच्चों के साथ स्पर्म बैंक के मालिक ने बुलाया और दु:खी नायक-नायिका से कहा कि ''ये सब 53 बच्चे भी तो तुम्हारे ही हैं। ये जो पूरा वर्ल्ड है ना, ये स्पर्म है,'' ... और जब इसकी पटकथा लिखी गई तब इस बात का पूरा ख़याल रखा गया कि इस कॉन्सेप्ट की कहानी को हिन्दी फिल्म के सारे रोमांटिक, कॉमेडी भावुक दृश्यों से पिरोया जाय। अब क्योंकि, हीरो से कॉमेडी हो रही है, (ध्यान दीजिये वो कॉमेडी कर नहीं रहा, बल्कि हो रही है।) इसलिए हिरोइन को गंभीर व रूखा चरित्र बनाया, फिर उसमें प्यार पैदा किया। अब जहाँ इंटर कास्ट व इंटर स्टेट प्यार होगा तो ड्रामा आएगा और क्योंकि फिल्म का रंग

ह्यूमरस है, तो कहाँ लाउड पंजाबी परिवार नायक का तो कहाँ इसके विपरीत नायिका का बंगाली परिवार आ गया। हास्य प्यार व प्यार में परेशानियाँ हैं तो गानों की सिच्युएशन बन गई और रहा सहा स्पर्म कलेक्ट करने से सेक्स का तड़का लग गया; और इस तरह तैयार हो गई एक नए फ्लेवर वाली इंडियन सुस्वादिष्ट थाली, जिसे सिनेमा घरों में लड़कियाँ चटकारे ले लेकर खा रही थीं और लड़के व हम जैसे पुरुष शर्मा-शर्मा के मज़ा ले रहे थे। रही सही मनोरंजन की कमी स्पर्म बैंक के मैनेजर व उसके स्टॉफ और नायक की पंजाबी फैमेली के संवाद पूरा कर लेते हैं। जैसे कि, ''शक्ल देखकर बन्दे का स्पर्म पहचान जाता हूँ।'' ''तू प्यारे आर्यनरेस है, तू आर्य पुत्र है भेण....।'' और अन्नूकपूर द्वारा जब भी स्पर्म शब्द बोला जाता है तो हाथ की दोनों उँगलियों का मूवमेन्ट स्पर्म के मूवमेन्ट जैसा किया गया है। है ना मज़ेदार तरीका, एक हिट फिल्म नए कलाकारों व नान कमर्शियल चरित्र अभिनेताओं को लेकर बनाने का।

इस तरह ये है एक अनूठे कॉन्सेप्ट पर एक हिट व मनोरंजक फिल्म लिखने का तरीका। तो आपने तीन अलग-अलग फ़्लेवर की फिल्मों की रायटिंग का सूक्ष्म ज़ायका लिया। गेंग्स ऑफ वासैपुर जैसी कठोर वास्तविक हार्ड हिटिंग, क्रूर फिल्म, दूसरी दबंग सिरीज की एक भरपूर हिन्दी मसाला फिल्म (बड़े स्टार्स वाली) और तीसरी विकी डोनर, एक दम बोल्ड व अनूठे कॉन्सेप्ट वाली हास्य प्रधान (ह्यूमरस) कम्पलीट मसाला फिल्म (नये कलाकारों वाली)।

तो कुछ ऐसे जुनूनी फिल्म निर्माता, निर्देशक होते हैं (हम जैसे ...हा! हा! हा!!!) जो नए कॉन्सेप्ट पर गेंग्स आफ वासैपुर और विकी डोनर फिल्म बना लेते हैं।

.....मैदान में ही ना उतरे तो क्या ख़ाक लड़ेंगे....?

क्रमशः

❑❑❑

2603, ऑबराय स्पलेन्डर, मजास डेपो के सामने, जे.वी.एल.आर.
अंधेरी(पूर्व), मुम्बई 400060
फ़ोन 02228387112

पाँच विधाएँ - पंच कन्याएँ (कविता, कहानी, व्यंग्य, उपन्यास, इतिहास)

कवि ने कहा
(नीलेश रघुवंशी)

नीलेश रघुवंशी एक समर्थ कवयित्री हैं जिनके पास अपनी भाषा और शैली है। कविता से इतर उनका उपन्यास 'एक क़स्बे के नोट्स' भी ख़ासा प्रशंसित हुआ। किताबघर द्वारा प्रकाशित इस 'कवि ने कहा' सीरीज़ की पुस्तक में नीलेश रघुवंशी की चुनिंदा कविताएँ हैं। संवदना के बहुत गहरे स्तर पर उतर कर रची गई यह कविताएँ पढ़ते समय कई सारे विस्मृत पन्नों को खोलती हैं। यह सारी कविताएँ जीवन से भरी हुई कविताएँ हैं। किशोर से जवान होती हुई लड़कियों को यह पुस्तक पढ़ने देना चाहिए, जिससे उन्हें यह पता चल सके कि संघर्ष का वास्तविक चेहरा कैसा होता है।

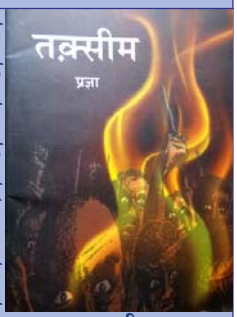

तक़्सीम
(प्रज्ञा)

प्रज्ञा को वैसे पहचाना जाता है अपनी आलोचनात्मक टिप्पणियों के कारण लेकिन पिछले कुछ दिनों में प्रज्ञा का एक समर्थ कहानीकार का रूप भी सामने आया है। यह रूप उतनी ही ऊर्जा तथा सुचिंतित दृष्टि से लैस है जितना की प्रज्ञा का आलोचक रूप है। कहानियाँ सरोकारों की बातें करती हैं, प्रश्न उठाती हैं और उनके उत्तर पूछती हैं। फ्रेम, अमरीखान के लमड़े, रेत की दीवार, तस्वीर के पीछे, इस ज़माने में जैसी बेहतरीन कहानियों के साथ प्रज्ञा की प्रशंसित और पुरस्कृत कहानी 'तक़्सीम' तो इस कहानी संग्रह की शीर्षक कहानी के रूप में है ही। ज़रूर पढ़ें यह संग्रह।

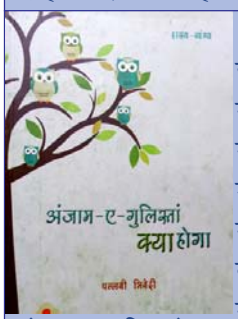

अंजाम-ए-गुलिस्तां क्या होगा (पल्लवी त्रिवेदी)

पल्लवी त्रिवेदी का यह व्यंग्य संग्रह है।अब इसे भी संयोग ही तो कहा जाएगा कि पल्लवी त्रिवेदी को भी ऊपर उल्लेखित दो रचनाकारों की ही तरह किसी अन्य विधा से पहचाना जाता है। गुल्ली द फेमिनिस्ट, काये सुनीता, भग गयी कलमुँही, आसा और मुकेस जैसे व्यंग्य बहुत सहज और सरल व्यंग्य हैं। इन दिनों के रूटीन व्यंग्य की तरह ये थकाते नहीं हैं। आवश्वस्त करते हैं कि व्यंग्य विधा में महिलाओं का प्रभावी हस्तक्षेप पल्लवी के माध्यम से हो रहा है। यह व्यंग्य रोज़मर्रा के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से उपजे हैं। पढ़ेंगे तो अपने-से ही लगेंगे आपको पात्र।

दर्दजा
(जयश्री रॉय)

जयश्री रॉय इस समय की महत्त्वपूर्ण कथाकारों में से हैं। उनका यह नया उपन्यास दर्दजा यह बताता है कि क्यों वह महत्त्वपूर्ण हैं। दर्दजा दुनिया भर की स्त्रियों की कहानी है। जयश्री रॉय ने हालाँकि इस उपन्यास में भारत से बहुत दूर किसी दूसरे देश की कहानी चुनी है, लेकिन उसके बहाने से सवाल पूरे स्त्री जगत् की ओर से उठाए हैं। किस-किस प्रकार की वहशी प्रथाएँ दुनिया भर में स्त्रियों को नियंत्रित करने के नाम पर आज भी चलती हैं, उसे पढ़ना जैसे किसी नई दुनिया में प्रवेश करने के समान है। दर्दजा दर्द का उपन्यास है, पढ़ेंगे तो स्त्रियों के दर्द का पता चलेगा।

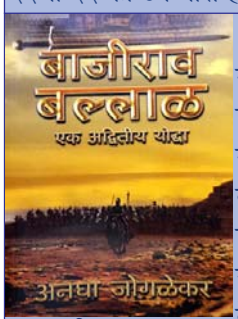

बाजीराव बल्लाळ
(अनघा जोगळेकर)

अनघा जोगळेकर का नाम अभी नया है लेकिन किताब पढ़ते समय नहीं लगता कि लेखिका का नाम नया है। बस यह कि यह पुस्तक 'बाजीराव-मस्तानी' नाम की फिल्म के आने से पहले आ गई होती तो और महत्त्वपूर्ण होती। लेकिन बाजीराव के इतिहास को इतिहास की ही संतुलित भाषा में इस पुस्तक में अनघा ने प्रस्तुत किया है। ऊपर वर्णित चार विधाओं की पुस्तकों से अलग यह पाँचवी विधा है इतिहास लेखन की। अनघा ने बहुत सावधानी के साथ इस किताब को लिखा है। इतिहास की कई प्रामाणिक तथा रोचक जानकारियाँ इसमें हैं। अवश्य पढ़ने लायक किताब है।

समीक्षा

विविध आयामी सोच तथा भाषायी व्यवहार

सौरभ पाण्डेय

निकला न दिग्विजय को सिकंदर (ग़ज़ल संग्रह)

लेखक: ज़हीर क़ुरैशी
मूल्य : 150 रुपये,
प्रकाशक : अंजुमन प्रकाशन, 942,
आर्य कन्या चौराहा, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

ज़हीर क़ुरैशी की ग़ज़लों से गुज़रना आज के दौर के तमाम तरह के जंगलों, मैदानों, खेतों, गाँवों, कस्बों और परिवारों की विभिन्न दशाओं-भावदशाओं से गुज़रना होता है। जहाँ एक ओर यह 'अधउगे गंजे' खेतों के हाहाकार से हो कर जाती पगडंडियों पर बढ़ते जाने के समान हुआ करता है, तो वहीं दूसरी ओर रोज़-रोज़ लसरती हुई बस्तियों की विवशताओं से रू-ब-रू होने और तमाम जानी-अनजानी गलियों में हाँफती हुई इकाइयों की हिचकियों और असंवेदनाओं की झल्लाहटों का सामना करने के समान है। - अँधेरे में उतर कर ही जड़ों ने ज़िन्दग़ी पाई / जड़ें मरने लगीं ज्यों ही जड़ों ने रोशनी पाई

ज़हीर क़ुरैशी के इस संग्रह की ग़ज़लों से गुजरते हुए बार-बार प्रतीत होता है कि उनका ग़ज़लकार सचेत तो है ही, उसकी ग़ज़लें भी भाव-संप्रेषण के नाम पर अन्यान्य काव्य-तत्वों का यथोचित समुच्चय मात्र नहीं हैं। बल्कि उनका स्वरूप प्रयुक्त शब्दों के साथ-साथ उन शब्दों के निहितार्थ, उनके व्यवहार, उनके उच्चारण और मिसरों में वर्ण-व्यवस्था (बहर का विन्यास और शब्द-संयोजन) पर भी वैधानिक, साथ ही एक विशिष्ट दृष्टि भी रखता है। साथ ही साथ, वह आवश्यक नियम-निर्वहन को समझने के लिए पाठकों को बाध्य भी करता है। -दिखाने भर को सम्हाला है मोर्चा हमने / नहीं है गोलियाँ दोनों की पिस्टलों में अभी।

अपने प्रस्तुत संग्रह की ग़ज़लों के हवाले से भी ज़हीर क़ुरैशी अपनी समझ के वृत्त की त्रिज्या को सतत लम्बी करते जाने के प्रयास में अवश्य सफल हुए हैं। तभी तो, आपकी सोच के वृत्त की परिधि निरंतर बड़ी होती चली गयी है। वृत्त की परिधि का निरंतर बड़ा होते जाना किसी साहित्यकार के लिए उत्तरोत्तर अन्यान्य वैधानिक बिन्दुओं के सापेक्ष लगातार समृद्ध होते चले जाने का ही तो द्योतक है। -मैं समझता हूँ सुखद संयोग, तुम कुछ भी कहो / फिर से जुड़ने का हमें रस्ता नया मिल है गया !

काव्य-विधा का व्याकरण भावनाओं के येन-केन-प्रकारेण प्रस्तुत कर देने का हामी नहीं होता। ग़ज़लों का व्याकरण (अरुज़) तो और भी पैनी दृष्टि से प्रस्तुतियों का नीर-क्षीर चाहता है, जिसका वैधानिक संस्कार ग़ज़लकारों से परिपाटियों को निभाने के प्रति लगातार सचेत करते रहने के बावज़ूद कथ्य प्रस्तुतीकरण के क्रम में ऊँचे से ऊँचे उड़ने के लिए आवश्यक आकाश भी उपलब्ध कराता है। - उमस के साथ, अनायास घिर गये बादल / तो छेद दिखने लगे झोपड़ी को छप्पर में।

ठोस ज़मीन पर विचरना और अनुभूतियों को सीधी-सादी किन्तु सान्द्र संप्रेषणीयता के साथ अभिव्यक्त करना ज़मीनी सोच वाले व्यक्तियों का मुख्य गुण हुआ करता है। ज़हीर क़ुरैशी का ग़ज़लकार ठोस ज़मीन पर ही नहीं चलता, बल्कि खुरदुरी, असमतल ज़मीन पर चलते हुए अपने अनुभूत बिन्दुओं को संग्रहीत करता चलता है। - खुरदुरा सच ही अब हमको प्यारा लगे, / खूबसूरत थी सपनों की दुनिया कभी।

जीवन की क्लिष्ट सच्चाइयों को रोज़ झेलने वाला संवेदनशील मन अपने मिसरों के माध्यम से ग़ज़लों पर रूमानी अहसास के बरक़ चढ़ाए भी तो कैसे ? वह वायव्य भावदशा में विचरने का आग्रही कभी रहा ही नहीं हैं। इसके लिए वास्तविक जीवन की तल्ख़ सच्चाइयाँ इतनी आग्रही रही हैं कि एक ज़िम्मेदार ग़ज़लकार के तौर पर वह उनसे अपनी नज़रें फेर ही नहीं सकता। - भटक रहे हैं लगातार जंगलों में अभी / सफ़र हमारा है रस्ते की मुश्किलों में अभी।

ज़हीर क़ुरैशी जैसों के पास ही ग़ज़लें अपने पारम्परिक रूप से विलग, नयी कविता के समानान्तर खड़ी दिखने लगती हैं। यह विचार करना आवश्यक हो गया है कि नारी-विमर्शों या शोषित वर्ग पर हुई चर्चाओं से सामने आये परिणाम अपने तमाम दावों के बावज़ूद एक सीमा के बाद सिवा निर्जीव नारों के क्या रह गए हैं ? जबकि इसके उलट, संवेदनाएँ किसी भावदशा को जीने के लिए आयातित अनुभूतियों का सहारा नहीं लेती, न वायव्य शब्दो का आवरण ढूँढ़ती हैं। ज़हीर क़ुरैशी का ग़ज़लकार मानों अपनी रचनात्मकता के उच्च स्तर पर पर एक तरह से परकाया में प्रवेश करता हुआ भावशब्दों को गढ़ता है। यही कारण है कि नारी की विभिन्न समस्याओं के प्रति जिस ज़िम्मेदारी से ज़हीर क़ुरैशी का ग़ज़लकार आवाज़ उठाता है, वह विमर्श के कई पहलुओं के लिए आलम्ब की तरह व्यवहृत हो सकता है। ज़हीर क़ुरैशी की ग़ज़लों के प्रासंगिक शेर इसका ज़बर्दस्त हामी बन कर सामने आते हैं। - विज्ञापन के 'फोटो-सेशन' में क्यों आई है / वो जो खुल कर देह दिखाने को तैयार नहीं !

इस संदर्भ में नूर मोहम्मद 'नूर' ने स्पष्ट कहा है, 'समकालीन

सामाजिक परिदृश्य में आकंठ डूबी ज़हीर की ग़ज़लों में उनकी एक विशिष्ट भंगिमा भी है, जो उन्हें उनके समकालीनों में किंचित अलग खड़ा कर देती है, वो है उनकी ग़ज़लों में जगह-जगह बार-बार नमूदार होती हुई स्त्री।' कहना न होगा कि यह स्त्री ग़ज़लों की परम्परा की स्त्री नहीं है। बल्कि आज के दौर की जूझती हुई, विसंगतियों और अमानवीयता के विरुद्ध खड़ी होती हुई, मौन अथवा मुखर किन्तु प्रतिकार करती हुई स्त्री है। यह स्त्री उपरी तौर पर बेबस भले ही दिखती हो, लेकिन किसी तौर पर हार नहीं मानती हुई स्त्री है। – मैं अपनी माँ को भला कौन सा विशेषण दूँ / वो जिसके मन में धरित्री का धीर शामिल है।

यह सर्वमान्य सत्य है, कि किसी ग़ज़लकार की ग़ज़लों में सच्चाई तभी आ पाती है, जब आमजन की समस्याएँ, उसके दुख-दर्द सामाजिक दर्शन में रूपांतरित हो कर शाब्दिक हो जायँ।

ज़हीर क़ुरैशी दैनिक जीवन से एक-एक सूत्र उठाते हैं और उन्हें आम भाषा के शब्द, मुहावरा, बिम्ब दे कर उनमें आगे जीने पाने की उम्मीद तलाशते हैं। इसी क्रम में आज की राजनीति की भाषा को आपने शब्द और स्वर दिये हैं। आपका स्वर कुव्यवस्था के विरोध का है, नकि आम प्रचलन में आ चुका पार्टी-पोलिटिक्स के पक्ष-विपक्ष में बोलने का। – उस दिन से गड़बड़ाने लगा वोट का गणित / जिस दिन से काम करने लगा जातिवाद भी।

ग़ज़लकार का यही उत्तरदायी स्वर पाठक के हृदय की गहराइयों में देर तक अनुगूँज पैदा करता है जो असहज प्रतीत होते वातावरण के बावज़ूद उसके मन में आश्वस्ति के भाव जगाता है। व्यवस्था विरोध के नाम पर ज़हीर कुरेशी का पाठक भयावह वातावरण से आतंकित नहीं होता, बल्कि आशान्वित हो कर हर क्षण उत्साहित हुआ उसके प्रतिकार की बात सोचता है। किसी रचनाकार के पाठक के मन में पैठ बनाती यही आशावादिता रचनाकार की सबसे बड़ी ताकत हुआ करती है। – अडिग देखा गया विपदा उनको / वो जिनके हौसले लड़ कर बने हैं।

ऐसी आशावादिता मूर्खई नहीं होती, या

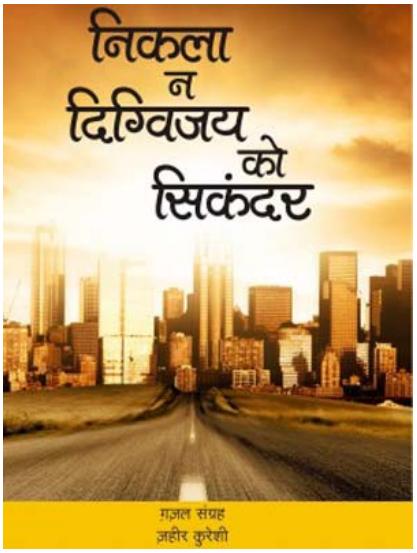

उसमें कोई थोथापन नहीं होता। तभी तो कई जगह ज़हीर क़ुरैशी अपने अनुभवों के साथ दार्शनिक अंदाज़ में सामने आते हैं। जीवन-दर्शन के बिना ग़ज़ल में गहराई नहीं आ पाती, न प्रासंगिकता का कोई अर्थवान प्रभाव पड़ता है। – किवाड़ टूटने वाले हैं क्या किया जाये / बची हुई है सहनशक्ति साँकलों की अभी।

तभी तो सामाजिक सरोकारों और उसकी असहजता को शब्द और स्वर देते हुए ज़हीर क़ुरैशी का भावबोध नैराश्य नहीं, उम्मीदें जगाता है। समकालीन जीवन के कई विषय और बिन्दु हैं, जो ग़ज़लकार की दृष्टि पड़ते ही विशिष्ट बन गये हैं। जैसे कि, आधुनिक टेक्नोलोजी, इसके कारण समाज और व्यक्ति पर पड़ता प्रभाव, वैश्विकता का धरातल, इससे उपजा बाज़ार, आकांक्षाएँ, वर्तमान राजनीति की दशा, राजनीतिक कुटिलता, धर्म का विकृत स्वरूप, धर्म और राजनीति का घालमेल आदि। – मरता है कौन 'धर्म' या 'भगवान' के लिए / अब कर रहा है लाखों का सौदा 'जिहाद' भी।

ज़हीर क़ुरैशी की संवेदनशील दृष्टि व्यामोह और द्वंद्व को खूब रेखांकित करती है। अटपटे विकास का विकृत चेहरा किसी भी जागरूक और संवेदनशील रचनाकार को उद्वेलित कर सकता है। ज़हीर क़ुरैशी कैसे अछूते रह सकते हैं ? उनकी ग़ज़लें इन अर्थों में वर्तमान का वास्तव में आईना हैं। – ये कूटनीति है, चलते हैं शीत-युद्ध यहाँ / हमारी आँखों को आते नहीं नज़र हमले।

इस बिन्दु पर डॉ. मधु खराटे का कहना है, 'उपभोक्ता संस्कृति की कारगुजारियों का खुलासे करना ज़हीर क़ुरैशी के काव्य-बोध का प्रमुख हिस्सा है।' कहना न होगा, आदमी जितना अधिक शक्ति-सम्पन्न होता गया है, नैतिक और चारित्रिक रूप से उतना ही पतित भी होता गया है। – पहले अपने नियम बनाते हैं / लोग फिर खेलने को जाते हैं।

भौतिकवाद की सच्चाई बाज़ारवाद की सच्चाई है। बाज़ारवाद का अर्थ केवल खरीदने-बेचने के लिए माल और माहौल मुहैया कराना नहीं है। आज के दौर में आदमी ही वस्तु है और बदले में दैहिक सुख और मनोरंजन का व्यापार करता है। भावनाओं को बूझने में व्याप चुका विद्रूपीकरण न बिके हुए के लिए घोर हताशा का कारण बन जाता है। मुख्य समस्या यहाँ है। – कुछ बेचने चले हैं तो फिर मुस्कुराइए / मुस्कान के बिना नहीं चलती दुकान भी।

आज के मनुष्य के लिए येन-केन-प्रकारेण सफलता प्राप्त कर लेना आवश्यक ही नहीं, लक्ष्य है। आज मात्र और मात्र सफल होना ही ध्येय है। लेकिन विचित्र यह है, कि ऐसी एकनिष्ठता वैकल्पिकता का सहारा नहीं देती। जिस कारण असफलता अधिक भयावह लगती है। लेकिन संवेदनशील मन ताड़ तो लेता ही है – जिस तरह प्राप्त कीं सफलताएँ / जीत लगने लगी है हार कहीं।

स्पष्ट है, कि हिन्दुस्तानी भाषा-भाषी ज़हीर क़ुरैशी का ग़ज़लकार अपने पाठक-श्रोता को एक-एक शेर से जीवन के कई-कई आयाम दिखा सकने की क्षमता रखता है। ज़हीर क़ुरैशी अपनी विशिष्ट सोच तथा अपने भाषाई व्यवहार के कारण ही ग़ज़लों को नई ऊँचाइयों तक ले जा पाते हैं। प्रस्तुत ग़ज़ल-संग्रह 'निकला न दिग्विजय को सिकन्दर' में कुल एक सौ ग़ज़लें शुमार हुई हैं।

अपनी विशिष्ट शैली से संग्रह की ग़ज़लें पाठकों का ध्यान अवश्य ही आकर्षित करेंगीं, इसमें संदेह नहीं।

❑❑❑

एम-2 / ए-17, ए.डी.ए. कॉलोनी, नैनी,
इलाहाबाद – 211008 (उप्र)
मोबाइल : 9919889911
ईमेल : saurabh312@gmail.com

समीक्षा

संवेदनाओं के बीज उगाती कविताएँ

दिविक रमेश

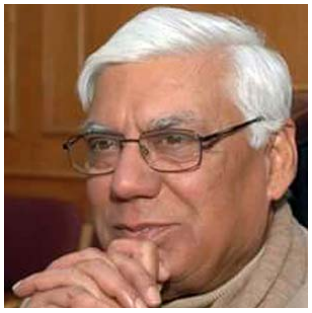

शुक्रगुज़ार हूँ दिल्ली (कविता-संग्रह)

लेखक: संतोष श्रेयांस,
मूल्य: 250.00,
प्रकाशक: सृजनलोक प्रकाशन
वशिष्ट नगर, आरा-802301.

'शुक्रगुज़ार हूँ दिल्ली' संतोष श्रेयांस की 50 कविताओं का संकलन है; जिसे उन्होंने अपनी 45 की उम्र में प्रकाशित कराया है और इसी शीर्षक की एक लंबी कविता भी यहाँ संकलित है। कवि का मानना है कि 'जीवन की आपाधापी में जो कुछ छूट रहा है, उन मानवीय मूल्यों को सहेजने के आग्रह से उपजती हैं मेरी कविताएँ।' यद्यपि मानवीय मूल्यों के सही परिप्रेक्ष को समझने के लिए रचनाकार की दृष्टि (विज़न) की ज़रूरत बनी रहती है तो भी उसकी बहुत कुछ भरपाई रचनाओं के गहरे में उतरने से भी हो सकती है। कवि ने इस संग्रह को अपने आदरणीय माँ-पापा के साथ-साथ उन सभी व्यक्तियों और घटनाओं, जिनसे उनकी चेतना और बोली-भाषा को विकसित करने और परिष्कृत करने में मदद मिली है, को समर्पित किया है जिससे उनके अपने से बाहर के प्रदृश्य से जुड़ाव का पता चलता है।

यदि मैं प्रारंभ में ही, बिना विस्तार में जाए, संक्षेप में कहना चाहूँ तो कहूँगा कि ये कविताएँ छलावों और औपचारिकताओं की आड़ में क्रूरताओं और चालाकियों के द्वारा एक ओर उगाए जा रहे जंगलों और दूसरी ओर सही मनुष्य को छोटा या बोंसाई बनाने की साज़िशों के माहौल को आईना दिखाने में काफी हद तक सफल हुई हैं। अच्छी बात यह है कि अनेक कविताएँ मनुष्यता की कब्र खोद रही स्थितियों के बीच संबंधों की आत्मीयता की निरन्तर खोज करती हैं और कुछ अपेक्षित हो जाने की इच्छा या आशा को रेखांकित भी करती है। यहाँ संवेदना की उस गहराई और रूप सम्पदा की पहचान भी है जो निरर्थकता की ओर धकेले जा रहे व्यक्ति को उबार सकती है। साथ ही ये कविताएँ कभी टटके बिंबों और कभी व्यंग्य की पैनी नोंक को अपनी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना कर पेश हुई हैं। भाषा सहज ही पारदर्शिता और संप्रेषणीयता के गुण से संपन्न है।

अब मैं इस संकलन की, मेरी निगाह में, कुछ अच्छी और खास कविताओं में से कुछ के विस्तार में जाना चाहूँगा। बता दूँ कि ये कविताएँ इस संकलन को भी विशिष्ट बनाने में सफल हुई हैं। पहली ही कविता है-पेड़ और पिता। ऊपरी तौर पर यह कविता पिता के प्रति कृतज्ञता-भाव की प्यारी कविता लगती है लेकिन अन्तत: यह एक ऐसे मध्यवर्गीय भारतीय पिता का प्यारा यथार्थ है जो अपने जीवन के संघर्षों को जीते हुए, अपनी जिजीविषा को कायम रखते हुए, अपने परिवार की खुशियों पर अपने को सहर्ष और स्वेच्छा से न्योछावर करता रहता है और वह भी बिना किसी उपकार की भावना के 'ठीक वैसे ही जैसे नहीं बचाता पेड़/ अपने लिए आखिरी फल भी'। इस कविता का अभिव्यक्ति पक्ष भी बहुत आकर्षक है। एक अर्थवान बिंब देखिए जिसे इस कविता की ही नहीं बल्कि समकालीन कविता की उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है - वरोह को पकड़ जैसे नदी में झूल जाते हैं बच्चे/ और उफ़ तक नहीं करता बरगद का पेड़/ पिता की लंबी मूँछ पकड़/ हम लटक जाया करते थे उनकी गोद में।

संबंधों के उज्ज्वल पक्ष की बात करें तो ध्यान विशेष रूप से कुछ और कविताओं की ओर भी जाता है, जैसे लौट आने तक, एहसास और तुम फाग का गीत हो। इन कविताओं में संबंधों की मिठास भी है और उससे निसृत वह हौंसला और प्रेरणा भी है जिसके रहते कोई भी यह कहेगा- 'कब का बिखर गया होता/अगर तुमने नहीं दिलाया होता एहसास/बहुत कुछ है अभी जीने के लिए/ और कुछ नहीं तो/ मैं तो हूँ तुम्हारे साथ।'

मुश्किल यह है कि संबंध निजी हों या सामाजिक सबमें छलावों और औपचारिकताओं आदि के रूप में विकृतियाँ अधिक देखने को मिलती हैं। यहाँ प्यार तक केवल स्खलित होने भर की चीज़ बन कर रह गया है-बाहों के जकड़न / और जाँघों के ज़ोर के बीच / बचा रहा प्यार / स्खलित होने तक। वस्तुत: प्रेम हो या प्रेमिका, बस शब्द भर बन कर रह गए हैं। इस बात को समझने के लिए एक कविता 'घर का रास्ता' को पढ़ा जाना चाहिए। इस कविता की प्रारंभिक पंक्तियों में ही प्रेमिका एकवचन नहीं है, यह भी गौर करने वाली बात है -नहीं अब नहीं बनानी (बनाना) मुझे / प्रेमिकाओं के लिए हवाई महल। अन्तत: यह कविता एक दिल फेंक तथाकथित प्रेमी के पश्चाताप की कविता है। आज सामाजिक रिश्ते भी अन्तत: मोहभंग की फसलें उगाने वाले होते हैं, राजनीतिक माहौल भी हर समय छलावे का समुद्र रचता रहता है। 'छलावा' कविता इस बात

को समझने के लिए बहुत ही सटीक कविता है। किसी की कुरबानी छलावे का खेल खिलने के लिए सरकार बनने की राह होता है। और नतीजा यह हाथ आता है- 'आज जब तुम सरकार हो गए हो / हमारे माई-बाप / माथे पर धरे इनाम / दर-दर की ठोंकरे खा रहे हैं हमारे लाल / पुलिस ने उखाड़ दिया रहा सहा भी छान / सात दरवाज़ों के पार / अब तुम तक पहुँचती ही नहीं हमारी फरियाद। यहीं एक और कविता याद आती है-सच मानिए। इस कविता में वह सच सामने आता है जो होना नहीं चाहिए पर है। न्याय हो या बाँस जैसी ऊँचाई रखने वाले लोग या फिर लोकतंत्र ही, सब का चरित्र उनके घोषित रूप से अलग होता है और मामूली आदमी उस अलग रूप को पहली बार जानता है और हतप्रभ होता है। हद तो यह है कि जो नहीं होना चाहिए उसके खिलाफ बोलने पर उसे 'उकसाने' की भाषा कहकर अपराध करार किया जा सकता है। समाज में सत्ता का जो चरित्र हो चुका है उसकी एक अभिव्यक्ति देखिए -'तुम्हारे शब्द / उम्मीद की किरण बन चमकने लगे थे / मजलूमों की आँखों में / उत्पन्न करने लगे थे उनमें आस्था / अच्छाई के लिए / दृढ़-प्रतिज्ञ एक सुनहरे भविष्य के लिए / सचमुच इतना ही कसूर था तुम्हारा / और इसीलिए हत्या की गई तुम्हारी / कि इन सबके विरुद्ध / जंग के एलान थे तुम्हारे शब्द।'' ऐसे में अगर अपने सपने भी कोसने की वस्तु, अपनी कमज़ोरी को उजागर करने वाले और अपने भीतर बौनेपन का एहसास जगाने वाले लगने लगें तो उन्हें स्वाभाविकता के दायरे में रखकर ही समझना होगा। और एक ऐसी समझ को खोज निकालना होगा जो गलत को उखाड़ फेंकने की सही दिशा में ले जाती हो - 'उखाड़ फेंकना होगा उन दरख़्तों को / जो रोक लेते हैं / सूर्य की रौशनी, उसकी ऊष्मा / अपने जड़ों में नहीं पनपने देते / कोई पौधा।'' (उखाड़ फेंकना होगा)। इसी क्रम में रूपम पाठक द्वारा पूर्णिया के भाजपा विधायक की हत्या से कविता 'अब जनता जाग रही है' अस्तित्व में आती है। यह कविता ज़ुल्म ढहाने वालों (जिनमें विशेष रूप से सत्ता सम्पन्न जन प्रतिनिधि सम्मिलित हैं) को एक बड़े वैश्विक फलक

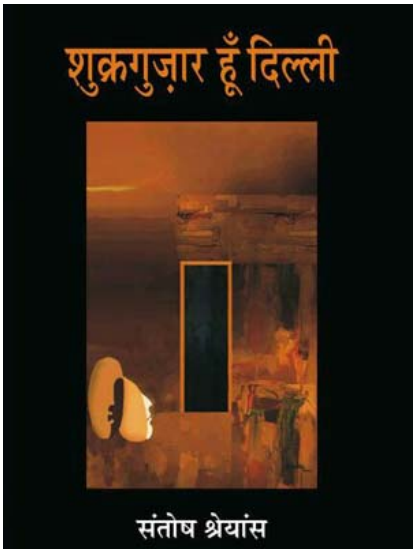

पर ले जाकर जनता की शक्ति के प्रति सचेत कराना चाहती है। इसी कविता में जन संचार माध्यमों के बिगड़े या अन-अपेक्षित चरित्र पर भी प्रहार किया गया है जो संवेदनशील घटनाओं को भी क्या से क्या बना कर छोड़ता है और एक मुद्दे को एक गलत दिशा में मोड़ देता है- 'हालाँकि, जनता के बढ़ते असंतोष / के फूटते इस आक्रोश को बननी चाहिए थी / देश की सबसे बड़ी सनसनीखेज ख़बर / बजाय इसके, मीडिया ने / सुरक्षा कर्मियों के मुस्तैदी का सवाल उठाया / विधायकों ने / अपने चाक-चौबन्द सुरक्षा व्यवस्था का...।''

अंत में संग्रह की तीन और कविताओं के बारे में बात करना चाहूँगा जिनका इस संग्रह को उल्लेखनीय बनाने में भरपूर योगदान माना जा सकता है, वे हैं--हमारा राष्ट्रीय गर्व, बाकी सब ठीक-ठाक और शुक्रगुज़ार हूँ दिल्ली। इन कविताओं के शीर्षक व्यंगात्मक हैं। कविता 'हमारा राष्ट्रीय गर्व' तो पूरी की पूरी व्यंग्य कविता कही जा सकती है। एक अच्छी कविता। कविता समझाती है कि 'हमारे देश का राष्ट्रीय गर्व है / नियम और निषेध के विरुद्ध आचरण।' मज़ेदार बात यह है कि यह सच औरों पर भी लागू होता है और खुद अपने पर भी -

जी हाँ जनाब, इन सबकी बिसात
सड़क किनारे के उस वर्जित कोने की
तरह है जहाँ हमारे जैसे सभ्य, संभ्रांत
और शिक्षित लोग भी
खैनी-पान खाकर थूकते और मूतते हैं
बिंदास ...बेपरवाह..
बावजूद इसके कि
बड़े-बड़े अक्षरों में साफ़-साफ़ लिखा
होता है
यहाँ थूकना और मूतना मना है।

'बाकी सब ठीक ठाक' लोक मुहावरे से उठाई गई चिट्टीनुमा अभिव्यक्ति है; जिसमें सब कुछ विपरीत होते हुए भी कहने को यही कहना पड़ता है-बाकी सब ठीक ठाक। व्यंग्य और हास्य का अच्छा सम्मेलन। मसलन महँगाई की मार से दलित हुआ भारतीय इंसान अपनी भूख-प्यास आदि का रोना रोने के बाद भी अंततः बात की तान यहीं तोड़ता है -बाकी सब ठीक ठाक। एक बानगी लीजिए-- अब तो आरा शहर भी / पहले जैसा नहीं रहा जनाब / महानगरों की तरह यहाँ भी खुल गए हैं कई माल / ढाबा की जगह ले रहे हैं रेस्तराँ और होटल / और तो और खुल गए हैं कई-कई बियर-बार / सड़कों पर भी बढ़ रही है / नित नई गाड़ियों की तादाद / पैदल चलना भी हो गया हो मुहाल / बाकी सब ठीक ठाक।

'शुक्रगुज़ार हूँ दिल्ली'' 10 भागों में बँटी एक लंबी कविता है; जिसमें महानगर की विडंबनाओं, उसकी बदहालियों का मार्मिक चित्रण हुआ है और साथ ही व्यक्ति के गुम होते अर्थ और उसकी प्रासंगिकता को बखूबी उकेरा गया है। कविता का अन्य मार्मिक आयाम है अपनी मूल जगह छूटने का दर्द और उसकी बरबस याद। सोने पर सुहागा तब हो जाता है जब अपने शहर की याद के साथ वहाँ की बोली-ठोली और लहजा भी सहज ढंग से आ लिपटता है-- 'किसी दिन अगर न निकले धूप / और सोए रहे अनठिया के / तो चले आते हैं मेजर चाचा / चाहरदीवारी के बाहर से ही पुकारते/ काऽऽऽरे...संतोषवाऽऽऽ / किसी दिन ना आए मेजर चाचा / तो चला आता है बरजेसवा / अरे का हो काका आज मुँह ना देखऽऽईबऽऽ।''

मुझे विश्वास है कि इस संभावनाओं से भरे कविता संकलन के भविष्य में अनेक सशक्त कविताओं का भण्डार छिपा है। कवि को बधाई और शुभकामनाएँ।

❑❑❑

बी-295, सेक्टर-20, नोएडा-201301
मो. 09910177099,
divikramesh34@gmail.com

समीक्षा

रोमाँच और शॉक्स

अमृतलाल मदान

छुअन तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह)

लेखक : विकेश निझावन
विश्वास प्रकाशन
557-बी, सिविल लाइन्स,
अम्बाला शहर-134003 -हरियाणा

देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में दो सौ से ऊपर कहानियाँ एवं कविताएँ प्रकाशित करा चुके तथा 'पुष्पगंधा' के संपादक विकेश निझावन का यह कहानी संग्रह तेईस कहानियों से सुसज्जित है। ऊपर से देखने पर हर कहानी का शिल्प और भाषा सीधी व सहज,किंतु भीतर कितनी ही गुत्थियाँ और गुंजल, बाप रे! और अंत में आकर कुछ सुलट जाने का अहसास या फिर सुरंग के अंत में रोशनी की किरण दिख जाने का भी। एक के बाद एक तेईस सुरंगों से गुज़रने जैसा है इसे पढ़ना।

लगभग आधी संख्या की कहानियों में तो व्यक्तिमन की रहस्यमयता के झीने परदे ही पाठकों को कुछ सोचते जाने पर विवश करते हैं। लगता है कि विकेश विविध पात्रों की विविध मन:स्थितियों एवं अनकही अभिव्यक्तियों का कुशल चितेरा है 'वैसे भी वह चित्रांकन तथा रेखांकन की कला में निपुण है' प्रसिद्ध चिंतक निर्मल वर्मा ने 'साहित्य का आत्मसत्य' नामक निबंध संग्रह में साहित्यसृजन के दौरान सोच की प्रक्रिया के अतिरिक्त रहस्यमयता एवं रसमयता के तत्त्वों को रेखांकित किया है। इनके चलते मैं समझता हूँ कि विकेश की अधिकतर कहानियों में भी वर्मा जी के शब्दों में 'न जाने कितनी पछाड़ खाती भावनाएँ, लहुलुहान करते अंतर्द्वंद्व, संदेह और आत्मभ्रांतियों के बीहड़ आते हैं; जिन्हें मनुष्य भोगता है।' विकेश का सजग संवेदनशील कथाकार इन बीहड़ों का द्रष्टा भी है उन्हें अपने बेचैन शब्दों के घेरों में समेटने का प्रयास करता हुआ।

आधी कहानियों के बाद की कहानियाँ जीवन की कुछ स्थूल आवश्यकताओं के कथ्य से जुड़ी हैं हालाँकि इनमें से भी विचार का निष्कासन नहीं होता। इन ज़रूरतों में मनुष्य की कामेच्छाओं के अलावा आर्थिक सुरक्षा, रोटी से उदर की पूर्ति, स्त्री की सामाजिक सुरक्षा आदि मुद्दे हैं, पर राजनीतिक या कोरी विचारधारात्मक नारेबाज़ी नहीं है। विकेश कहानियों के प्लाट बुनते हुए प्रतीकों, संकेतों, औत्सुक्य व विचित्र प्रकार की रहस्यमयी अनुभूतियों से जूझता चलता है। कहानी संग्रह की पहली कहानी 'यहाँ कोई बैठा है' की भरी ट्रेन में ख़ाली सीटें आरक्षण की समस्या का प्रतीक बन जाती हैं। यात्री अमर बाबू अपने बेटे के पर्याप्त प्रतिशत अंकों के बावजूद भी आश्वस्त नहीं हो पाते कि आगे उसे दाखिला मिल जाएगा। बुढ़िया की गठरी, हिजड़ों का नाच आदि कुछ ऐसे संकेत हैं कि सीटों को हड़पने के चलते सब ठीक नहीं है।

विकेश की कहानियों के अधिकतर पात्रों को जीवन के असह्य बोझ ने उन्हें सहज मानवीय गरिमा से वंचित कर दिया है फिर भी छिपकली की तरह वे जीवन से चिपके हुए हैं। 'छिपकली विकेश का प्रिय प्रतीक है' यथा गाँठ, सिलवटें, उसका फैसला आदि। कहानियों के पात्रों का अचानक हँस पड़ना, बिना बात मुस्करा देना, घर के भीतर- बाहर दम घुटने का संत्रास झेलना, उनकी विभिन्न सोच, मानसिक प्रतिक्रियाओं का परिचय देते हैं; जिनके कारण वे अनेकानेक संदेहों व भ्रमों का शिकार होते हैं और धीरे- धीरे मरते रहते हैं। यथा 'सिलवटें' का श्रीधर जो एक दिन में ही नहीं मर जाता, पत्नी सरिता की कठोरता के कारण वह अंदर घुट-घुट कर जीता हुआ अन्तत: सैर के बहाने नदी में जा डूब मरता है। यहाँ सिलवटें संदेहास्पद बिस्तर की ही नहीं, जीवन की बेचैन करवटों की भी हैं। ऐसे ही 'उसका फैसला' विद्या एड्स के प्रौढ़ मरीज़ की सेवा करते-करते उससे शादी रचा बैठती है ताकि रोगी को नारी का प्यार तो मिले। एक अन्य श्रेष्ठ कहानी 'सुरंग' में भी विचित्र मानसिकताओं वाले रेल यात्री हैं जो अपनी अपनी सुरंगों में खोए हैं, यथा अपने साथ ताश खेलता यात्री, छात्र के साथ दुष्कर्म का अपराधी मास्टर का संबंधी, बेघर हुई बुढ़िया। 'आश्रम' कहानी का कस्तूरी अपने मास्टर का लिंग काटने को चाकू की धार तेज़ करता दीखता है, अपनी माँ की तरह। 'सुरक्षा-कवच' में एक सास अपनी बहू शिप्रा द्वारा लगातार प्रताड़ित होती हुई जज से जेल की सज़ा की माँग करती है, जो घर की यातना से अधिक सुखकर होगी।

'चूड़ियाँ' कहानी में रज्जो का मोहभंग तब होता है जब वह अपने कथित प्रेमी को गुरुद्वारे के बाहर नवविवाहिता के साथ देखती है। 'खुशबू वाला सिक्का' में घर में बंदी बनी आगरे वाली लली का पालतू बंदर भी एक सजीव पात्र है। उसका दिया पाँच रुपये का सिक्का बाद में कथानायक के लिये प्रमोशन का आशीर्वाद बन जाता है। 'मातृछाया' भौतिकता की भागदौड़ में भावना की विजय का प्रतीक है तो 'मछलियाँ' कथित साहित्यकारों की पैसा का यश लिप्सा पर करारा व्यंग्य। कहानियाँ अन्तत:, अंग्रेज़ों, हेयर स्टाईल, चाँद में दाग, पाखण्डी आदि मनुष्य की स्थूल आवश्यकताओं, विवशताओं तथा फूले हुए अहं 'ईगो' की कहानियाँ हैं; जो प्रपंच ढोंग की ऊपरी सतहें कुरेद कर भीतर का सत्य दिखाती हैं चाहे वे

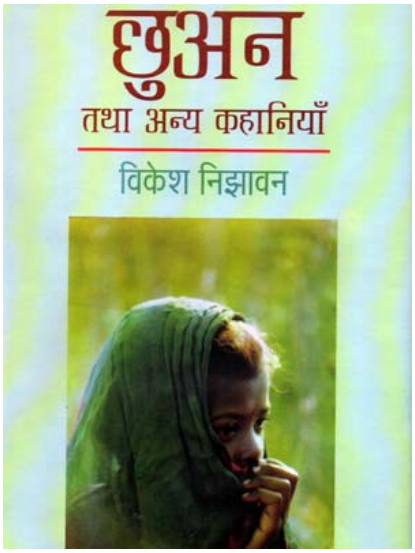

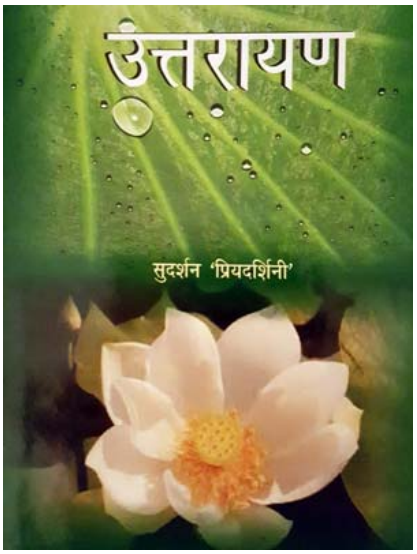

चिलम वाले बाबा हों या घूँघट की आड़ में दूध में पानी मिलाने वाली तोषी हो या मिलन ख़ुशी के माँ- बाप। हाँ, इन कहानियों के अंत चकित कर देने वाले भी हैं। कहीं संदूक में गत तीस वर्षों की इकट्ठी की गई राखियाँ भूली-बिसरी बहन द्वारा तीन भाइयों को देने का अंत हो या फिर मिसेज खरबन्दा द्वारा अनुराधा को दिया दीवाली पर पटाखों व मिठाई का लिफाफा ताकि वह बच्चे के साथ दीवाली मना सके। जिसका पिता दिवंगत हो चुका है। 'मजमेबाज' कहानी में दफ़्तर का क्लर्क और सड़क पर मजमेबाज मूसा बाबा की समानता झकझोर देती है। 'फासला' एक अत्यंत मार्मिक कहानी है जो लालची कपटी डॉक्टरों की पोल खोलती है। बेचारे हरनामा जो रोगी है, जमालो के साथ गाँव लौटने में भी असमर्थ हैं; क्योंकि डॉक्टर ने उनके पास किराए जितने पैसे भी न छोड़े। 'छुअन' कहानी वाकई शीर्षक बनने के लायक है। गरीब शिवा की अत्यन्त कुरूप बेटी अंततः एक अपंग आदमी में अपना जीवन संगी ढूँढ़ती है तथा उसमें अपने दिवंगत पिता की देहगंध भी।

सभी कहानियों में प्रवाह है, पाठकों को बाँध रखने की क्षमता है, आगे क्या होगा की जिज्ञासा है, खुल कर वर्णन करने में सुखद झिझक है, गंभीर सोच की लगातार प्रक्रिया है, चौंकाने -चुँधियाने वाली दृष्टि है।

❑❑❑

प्रोफ़ेसर कॉलोनी, कैथल-136027
हरियाणा। दूरभाष: 09466239164

समीक्षा

अपूर्व कौशल

महेश कटारे

उत्तरायण
(कहानी संग्रह)

लेखक : सुदर्शन प्रियदर्शिनी
प्रकाशक: नमन प्रकाशन, 4231/1 अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002
मूल्य:200 रुपये

सुदर्शन प्रियदर्शिनी के 'उत्तरायण' संग्रह की पहली कहानी 'अख़बारवाला' को तो मैं बेझिझक हिंदी की श्रेष्ठ कहानियों में शुमार कर सकता हूँ। अपरिचय की सामाजिक त्रासदी को सुदर्शन जी ने जिस भाषा-विन्यास के साथ सामने रखा है, उससे तो लगता है कि उस अति आधुनिक समाज में आदमी एक दिन अपने निजत्व के खोल में बंद घोंघा बन कर रह जाएगा। कहानी एक आदमकद सवाल खड़ा करती है कि निहायत अकेलेपन का अहसास उस कुत्ते के सुख से अधिक क्या है जो वैज्ञानिक सुविधाओं की हड्डी चँचोड़ते हुए अपने ही जबड़ों से रिस्ते रक्त के स्वाद में मगन तो हो लेता है पर नहीं जानता कि वह अपने ही रक्त का स्वाद चाभ रहा है। कहानी के और भी आयाम हैं जिनको कम शब्दों में तो व्याख्यायित नहीं किया जा सकता।

दूसरी जिस कहानी ने मुझे सुदर्शन प्रियदर्शिनी से परिचय का गौरव दिया वह संग्रह की शीर्षक कहानी 'उत्तरायण' ही है। एक रचना का वह उच्छवास कि 'औरत भी शायद कैलेंडर की एक पुरानी तारीख़ ही है - पुरानी हो गई तो फाड़ कर फेंक दी।.. बाप रे! इस सामाजिक व्यथा को इतने सहज शब्दों में व्यक्त कर पाना या तो गहरी संपृक्ति से संभव है या अपूर्व कौशल से। मुझे लगता है कि यह संपृक्ति से ही है। पर यदि यह अमेरिका की भूमि पर भारतीय दंपति की कहानी है तो वहाँ खाट का होना मुझ जैसे पाठक को असमंजस में डालता है। हाँ संग्रह का शीर्षक पढ़ते हुए उस से मेरे मन में भी लगभग ऐसा ही कुछ सोच पनपा था जो कहानी में दर्ज है कि 'हर दिन उसे एक महाभारत अपने कमज़ोर कंधों पर ढोना है ---उसे इस शर-शैया से कभी मुक्ति नहीं मिलेगी'। पर मैंने यहाँ भीष्म के स्थान पर रचनाकार को रखा था।

❑❑❑

निराला नगर,
सिंहपुर रोड, मुरार, ग्वालियर, मप्र
मोबाइल 9425364213

बाल-रंगमंच : सम्भावनाएँ और चुनौतियाँ

डॉ. प्रज्ञा

''ताल को कंपा दिया कंकड़ से बालक ने
ताल को नहीं अनंत काल को कंपा दिया''

कवि केदारनाथ अग्रवाल ने इन पंक्तियों द्वारा बच्चों में छिपी अनंत संभावनाओं की ओर इशारा किया है। जीवन के पहले शब्द से लेकर ठीक तरह व्यवहार करने तक बच्चा कई चीज़ें अनुकरण के आधार पर सीखता है। धीरे-धीरे अपने परिवेश के प्रति और अपने प्रति जागरूक होने पर वह सृजन से जुड़ता है। उसके द्वारा निर्मित उसका पहला वाक्य ही उसकी पहली सृजनात्मक अभिव्यक्ति है। फिर कई बार सीखने-सिखाने के जड़ अनुशासनों में उसकी सहज सृजनात्मकता कुंठित होने लगती है। इसमें परिवार और समाज में व्याप्त यांत्रिकता भी अपनी भूमिका निभाती है। इसके चलते बच्चा एक बँधा-बँधाया जीवन जीने को अभिशप्त हो जाता है।

बच्चे की प्राकृतिक सृजनात्मकता का महत्त्व और यांत्रिकता के खतरों का अनुभव करके दुनिया भर में काफी पहले से कई प्रयास किए जा रहे हैं। रंगमंच का क्षेत्र भी इनसे अछूता नहीं है। बच्चे के जीवन में पैठ बनाने वाली जड़ता और यांत्रिकता को तोड़ने और उसकी जगह सृजनात्मकता को स्थान देने के उद्देश्य से कई संस्थाएँ बाल-रंगमंच की दिशा में अग्रसर हैं। 'अल्लारिपु','संस्कार रंग टोली','रुचिका','खिलौना','इमागो इंटरनेशनल','थियेटर इन एजूकेशन इंडिया ट्रस्ट','अनंत' आदि कई ग्रुप, संस्थाएँ और संगठन सक्रिय रहे और आज भी सक्रिय हैं। रेखा जैन की अगुआई और निर्देशन में 'उमंग' जैसी बाल-रंगमंच की संस्था तो तीन दशक से अधिक की यात्रा कर चुकी है। इनके अतिरिक्त हिंदी अकादमी, उर्दू अकादमी, पंजाबी अकादमी, साहित्य कला परिशद् जैसी प्रमुख शाखाएं भी दिल्ली में गर्मियों की छुट्टियों के दौरान बाल-रंगमंच की कार्यशालाएँ कराती हैं। ये सभी संस्थाएँ अपनी गतिविधियों के माध्यम से बच्चों की दुनिया को बच्चों के ढंग से रूप-रंग देने की एक चुनौतीपूर्ण कोशिश कर रहे हैं।

बाल-रंगमंच के क्षेत्र में बहुत सारे रचनात्मक काम किए जाने की पहल के बावजूद एक आम धारणा आज भी बड़ी पुख़्ता है कि बच्चों का नाटक करवा देना ही दरअसल बाल-रंगमंच है। कई माता-पिता तो बच्चों को इन कार्यशालाओं में इसीलिए भेजते हैं कि बच्चा अभिनय की दुनिया का सितारा बनकर नाम और धन कमाए। टीवी धारावाहिकों ने भी इस लहर को गति दी है। बच्चे भी कुछ हद तक ऐसा ही सोचने लगे हैं। पर बच्चों के लिए आयोजित नाटक की कई कार्यशालाएँ पहले ही चरण में इन धारणाओं का खंडन कर देती हैं। उनका उद्देश्य समूह में बच्चों को एक साथ करके उन्हें एक ऐसा मंच प्रदान करना है जिससे उनमें जिज्ञासा बढ़े, एकाग्रता बढ़े, सहयोग और दायित्व की भावना विकसित हो। संघर्श से भरी ज़िंदगी, जीने का साहस पैदा हो।

बच्चों को कुछ सिखाने की प्रक्रिया में अक्सर उन्हें एक खाली बर्तन समझ लिया जाता है, जिसे अभिभावकों और स्कूल को अपने अनुसार भरना है। इस सोच के बरक्स बाल-रंगमंच से जुड़े अधिकांश लोग बच्चे को एक ऐसा दिया मानते हैं जिसमें भरपूर तेल है,करीने से बनी बाती है ज़रूरत है तो उस बाती को सही ढंग से जलाने की। इस क्षेत्र से जुड़े लोग मानते हैं कि सृजनात्मकता तो बच्चे में जन्मजात होती ही है। बाल-रंगमंच बस उसे राह देता है। मसलन, गाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है पर ये लोग उसे स्वर के सुर तक लाने की कोशिश करते हैं। इसी तरह चलना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, ये लोग उसे नृत्य तक लाते हैं। लंबे समय तक 'इमागो' से जुड़े रहे बैरी जॉन का कहना है-''यहाँ गुरू-शिश्य परंपरा जैसा कुछ नहीं है बल्कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर बल है। नाटक शुरू से अंत तक बच्चों के लिए सृजनात्मता का खुला क्षेत्र है।''

बाल-रंगमंच के माध्यम से दिल्ली की कई संस्थाओं ने सृजनात्मक गतिविधियों में नाटक के अतिरिक्त संवाद पर जोर दिया है। कई कार्यशालाओं में कहानी, कविता, चित्रकला, भ्रमण आदि को प्रोत्साहन दिया जाता है। नाटक की प्रक्रिया को और अधिक रचनात्मक और मौलिक बनाने के लिए आत्म (सेल्फ), परिवार, शिक्षा और समाज जैसे विषयों पर बच्चों से बातचीत की जाती है। अक्सर बच्चों के बारे में ये सोच लिया जाता है कि उनका मन बेहद कोमल होता है इसलिए उन्हें समाज के नकारात्मक पक्षों, घटनाओं से दूर रखा जाए। इन सबकी जानकारी से भी दूर रखा जाए। पर ऐसा नहीं है। आज के बच्चे भी अपने परिवेश को लेकर काफी जागरूक हैं। वे देख रहे हैं समाज में हिंसा है, अपराध है,अन्याय है। साथ ही गरीबी, अशिक्षा, बेरोज़गारी जैसी कई समस्याएँ भी हैं। राजनीतिक घोटाले, भ्रष्टाचार जैसी अनैतिकताएँ भी हैं और धार्मिक विद्वेष जैसी अमानवीयताएँ भी। बाल-रंगमंच की गतिविधियों में उनसे अपने आस-पास के समाज पर बातचीत की जाती है और उनके पास मौजूद जानकारियों से नाटक का प्लॉट तैयार होता है। जब वे नाटक का विषय चुनते हैं तो आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, गरीबी, पर्यावरण जैसे विषयों पर सोचते हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की संस्कार रंग टोली की भूतपूर्व आर्टिस्टिक इंचार्ज और अभिनेत्री विभा छिब्बर ने अपने अनुभवों के आधार पर बताया कि बच्चों की ये गतिविधियाँ प्रस्तुति नहीं बल्कि प्रक्रिया आधारित होती हैं। उनके अनुसार '' बच्चों के लिए परियों की, भूत-पिशाच की कहानियाँ अब बहुत

पुरानी हो गई हैं। अब बाल-रंगकर्म के जरिए उन्हें उनके दैनिक जीवन के कई मुद्दों को उठाकर संवाद की ओर लाने की कोशिश की जाती है।'' बच्चे जीवन से जुड़ी तमाम बातों में रुचि लेते हैं और इससे उनके चिंतन और विष्लेशण की क्षमता में गुणात्मक परिवर्तन भी आता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी इन रंग कार्यशालाओं ने अपना यथासंभव योगदान दिया है और निरंतर दे रही हैं। दिल्ली के सरकारी और पब्लिक स्कूलों से जुड़कर नाटक और कार्यशालाओं से जरिए ये संस्थाएँ परिवर्तनकारी भूमिका निभा रही हैं। ब्राज़ील के जाने-माने शिक्षाविद् पाउलो फ्रेरे ने स्कूल में पनप रही और विकसित हो रही यांत्रिक और सृजनात्मकता विरोधी प्रक्रिया को इस प्रकार समझाया है कि अध्यापक चिंतन करता है और विद्यार्थी उसके चिंतन का अनुसरण करता है। इसमें शिक्षक ज्ञान को एकदम निष्प्रभावी बना देता है। फ्रेरे उस शिक्षा का विरोध करते हैं जो 'मूकता (खामोशी) की संस्कृति' का समर्थन करती है। नाटक को शिक्षा से जोड़कर 'खामोशी की संस्कृति' की जगह संवाद की संस्कृति का विकास करने का प्रयास जारी है। लेखिका, अध्यापक और निर्देशक त्रिपुरारि शर्मा अर्से से बच्चों की संस्था 'अल्लारिपु' से जुड़ी रहीं हैं। उनका कहना है कि ''शिक्षा के संदर्भ में बाल-रंगमंच के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है कि वह शिक्षा का अंग बनकर आए, केवल मौज-मस्ती का नहीं। हमने कई स्कूलों में कार्यशालाएँ कीं और पाया चौथी-पाँचवी कक्षा के बच्चे लिखना-पढ़ना तक नहीं जानते। दूसरे, हमने पाया उनके बोलने और लिखने की भाशा अलग है। ऐसे में हमने दो बातों पर ध्यान दिया और काम किया। बच्चों में पढ़ने-लिखने की योग्यता का विकास हो और दूसरे उनके बोलने-लिखने की भाशा को एक बनाएँ।'' 'अल्लारिपु' जैसी संस्था ने राजस्थान में बच्चों के साथ काफी काम किया।

दिल्ली के विभिन्न स्कूलों में आयोजित इन नाट्य कार्यशालाओं में पढ़ना और सीखना दोनों प्रक्रियाओं पर ज़ोर दिया जाता है। नाटक, संगीत, नृत्य जैसी कलाओं से पाठ और कला में जुड़ाव ढूँढ़कर शिक्षण को नया फलक देने का प्रयास किया जाता है। देखने में आ रहा है कि दिल्ली के छोटे-बड़े कई स्कूलों को यह कदम बेहद ज़रूरी लग रहा है। कई बड़े स्कूल तो बाकायदा थिएटर टीचर रखने लगे हैं। 'इमागो एक्टिंग स्कूल' से जुड़े रहे बैरी जॉन नाटक के जरिए शिक्षण को नई ऊर्जा देने के पक्ष में हैं। वह उस तकनीक पर बल देते हैं जिसे प्रत्येक शिक्षक प्रयोग में ला सकता है। उनके अनुसार गणित, विज्ञान, साहित्य सभी विषयों की तकनीक को समझने के लिए नाटक की भूमिका ज़रूरी है। बाल-रंगमंच की दिशा में सक्रिय और 'थियेटर इन एजुकेशन इंडिया ट्रस्ट' से जुड़े और फिलहाल 'क्राई' के साथ कई राज्यों में बाल रंगमंच से जुड़े युवा रंगकर्मी वॉल्टर पीटर के मुताबिक उनका ग्रुप पहले जयपुर में 'संभव', अहमदाबाद में 'आनंद निकेतन' भोपाल में 'भारतीय विद्या भवन',उदयपुर में ' शिक्षांतर', दिल्ली में 'एन.सी.ई.आर. टी.' के सौजन्य से बच्चों, अध्यापकों और प्रशिक्षु अध्यापकों को लेकर कई कार्यशालाएँ कर चुका है। आज 'क्राई' के साथ लगभग नौ साल से जुड़े वाल्टर पीटर देश के कई राज्यों-राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश,उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड,कश्मीर में बच्चों की आवाज़ को रंगकर्म के माध्यम से एक मंच देने की कोशिश कर रहे हैं। अब तक अनेक कार्यशालाओं में विविध अनुभवों के साथ बच्चों के अनेक नाटक उन्होंने तैयार कराए हैं-'शिक्षा का अधिकार', 'सुरक्षा का अधिकार' जैसे नाटकों के साथ स्कूलों में शारीरिक दंड का विरोध करने वाला नाटक 'संडे हो या मंडे नहीं खाएँगें डंडे', 'थोड़ा है थोड़े की ज़रूरत है', बाल विधवाओं पर केंद्रित 'आज मेरी शादी है' जैसे नाटकों के शीर्षक ही अपने आप में बहुत कुछ बयान कर डालते हैं। सामाजिक मुद्दों पर आधारित ये नाटक ज्यादातर स्लम्स के बच्चों के साथ किए गए हैं। उनकी समस्याओं से जुड़े नाटकों में मुख्य बात यही है कि हर राज्य में बच्चे शोषण का शिकार पाए गए और उन्हें एक मुक्त मंच देने की कोशिश रही 'क्राई' की कार्यशालाओं ने की। पीटर बताते हैं, ''हम हर तीन महीने में एक राज्य में जाते हैं और बच्चों के साथ काम करते हैं। हम 'थियेटर इन एज्यूकेशन फॉर चेंज' के पक्ष में हैं। ड्रामा एक ताकतवर माध्यम है। हम बच्चों को पॉलिश्ड नहीं करते उनकी भागीदारी का प्रयास करते हैं। इन नाटकों के जरिए हम उनके बचपन को अभिव्यक्त करने की कोशिश करते हैं। क्योंकि बाल रंगमंच को राजा-रानी और फैंटेसी वर्ड से निकालने की सख़्त ज़रूरत है। दूसरे वे संस्थाएँ जो बाल-रंगमंच के नाम पर बच्चों को पॉलिश करने के चक्कर में हैं, दरअसल वहाँ भी तो बच्चा मज़दूर ही बनता है न।'' बाल-रंगमंच की दिशा में पीटर के उठाए सवाल बेमानी नहीं हैं। असल में होता यही है कि बाल-रंगमंच, बाल-सरोकारों का मंच न होकर बाल-नाटक का पर्याय बनाकर रख दिया गया है कि जिसमें नाटक संवाद, समस्या समाधान, किसी बाल-केंद्रित लक्ष्य की बात नहीं रहता बल्कि वह केवल प्रदर्शनकारी विधा के तौर पर ही अपनाया और सराहा जाता है।

बाल-रंगमंच की कई नाट्य कार्यशालाओं में बच्चों द्वारा तैयार नाटक सामाजिक सरोकारों से भी अछूते नहीं हैं। कहीं ये नाटक संस्कृति के प्रति दोस्ताना व्यवहार की नई परंपरा की शुरूआत की बात रखते हैं तो कहीं ज्वलंत मुद्दों पर अपना नजरिया पेश करते हैं। बाल रंगमंच से जुड़ी तमाम संस्थाएँ भी सामाजिक सरोकारों पर बल देती हैं। स्कूलों में असफलता के डर को बच्चों के मन से निकालना भी इस दृष्टि से एक ज़रूरी कदम है। 'अल्लारिपु' ने इस दिशा में अनेक सफल प्रयास किए हैं। विकलांग बच्चों के मन से हीन भावना निकालने का काम 'अनंत','रुचिका' जैसी संस्थाएँ कर रही हैं। विकलांग बच्चों के साथ रंगकर्म करने वालों में लुशिन दुबे का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। 1989 में 'किड्स वर्ल्ड' नामक संस्था की शुरूआत की और मानसिक रूप से अबल बच्चों को आम बच्चों के साथ स्टेज पर उतारा। 'उमंग' ने भी वंचित तबके के साथ बाल-रंगमंच के सपने को आयाम दिया। समाजीकरण की अवधारणा को शिक्षा से जोड़ना, माता-पिता का बच्चों से जुड़ाव और उन्हें पर्याप्त समय देना, साम्प्रदायिक सद्भाव और मानवीयता के प्रसार की दिशा में उन्मुख होना-जैसे कई काम बाल-रंगमंच से जुड़ी संस्थाएँ बखूबी कर रही हैं। इन मुद्दों पर विभिन्न कार्यशालाओं के दौरान निकले नाटक हैं- 'पंचतंत्र का शेर'(रुचिका), 'चाइल्ड लॉक'

(थियेटर इन इंडिया एजूकेशन ट्रस्ट), 'पर हमें खेलना है' (संस्कार रंग टोली), 'किस्सा एक मछुआरे का और सोने की मछली का' (खिलौना), 'द गिफ्ट' (अल्लारिपु)। शिक्षा की दृष्टि से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली की संस्कार रंग टोली का 'रज़िया सुल्तान' (इतिहास), 'तुलसी-तुलसी' (पर्यावरण), 'अनंत' का 'गड़बड़झाला' (प्राथमिक स्तर की कविताओं को लेकर तैयार किया गया नाटक) आदि उल्लेखनीय नाटक हैं।

इन संस्थाओं के द्वारा कई नए प्रयोग भी निरंतर किए जा रहे हैं। बच्चों को लोककथाओं-लोकपरंपराओं से परिचित कराने के साथ ही लोककथाओं को समसामयिक संदर्भों में प्रस्तुत करना भी एक बेहतर प्रयोग है। ऐसे ही प्रयोगों में 'अनंत' का 'किस्से' नाटक है। इस नाटक को बच्चों और दर्शकों ने काफी सराहा। इसी तर्ज पर 'खिलौना' के वी.के. ने पंचतंत्र की कहानी पर 'द अनग्रेटफुल मैन' तैयार किया। उत्तर प्रदेश की लोककथाओं पर आधारित 'गड़रिया और राजा' अल्लारिपु ने किया। कुछ और प्रयोगों को देखें तो फैंटेसी का रचनात्मक प्रयोग 'संस्कार रंग टोली' के 'लाल-लाल हाथी' में दिखाई पड़ता है। हाथी को लाल बताकर एक नई फैंटेसी गढ़ने का सीधा सरोकार बच्चों में कल्पनाशीलता का प्रसार है। नाटक का शीर्षक-गीत भी इस काम में मददगार साबित होता है। इसी तरह नाटक का कथ्य तैयार करने की प्रक्रिया को भी देखें तो अधिकांश कार्यशालाओं में पूर्वनिर्धारित नाटक की बजाय बच्चों से बातचीत के सिलसिले में उनसे समाज, परिवार, दोस्तों, आदतों, स्कूलों पर बातचीत के क्रम में नाटकों को तैयार किया जाता है। बच्चे खुद सोचते हैं कि ऐसी क्या बातें हैं जो उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण हैं और बड़ों के समाज तक उन्हें पहुँचाने का जरिया बनता है नाटक। यानि एक सच्ची कहानी, बच्चों की जुबानी। फिर चाहे माता-पिता के बीच की दूरी हो जो बच्चों के तनाव का कारण हो या माता-पिता की व्यस्त जिंदगी में उनसे समय की माँग करता बच्चा हो, या फिर बच्चे के अपने डर, अपनी इच्छाएँ हों जिन्हें वह खुलकर रख पाने में असमर्थ है। या फिर बच्चों की कल्पना का मुक्त संसार हो-जहाँ घोड़े तैरते हों और मछलियाँ उड़ती हों। बच्चे कैसी ज़िंदगी चाहते हैं, उनके सपने क्या हैं, घर, समाज, स्कूल के साथ उनकी परेशानियाँ क्या हैं, उनके नाटकों में केवल इन समस्याओं का ज़िक्र ही नहीं है बल्कि समाधान क्या है ये भी वही बता डालते हैं। इस तरह जिन्हें छोटा जानकर दरकिनार कर दिया जाता है वह इन रचनात्मक प्रयासों से समाज को आईना दिखा देते हैं।

अक्सर गर्मियों की छुट्टियों में चलने वाली इन कार्यशालाओं में बच्चे कहानी बनाना, सुनना, लिखना जैसे रचनात्मक कामों का हिस्सा बनते हैं। संवाद करके अपनी झिझक को कम करते हैं। आठ से सोलह आयु वर्ग के तमाम बच्चे अपने ग्रुप के साथियों के साथ खेल-खेल में ही चीजें करते चलते हैं। इन कार्यशालाओं में अनेक गतिविधियों में ये बच्चे सहज ही जुड़ जाते हैं। पोस्टर बनाना, मास्क बनाना, कविताएँ-किस्से रचना, नाटक लिखना, गीत गाना, तब कहीं अंतिम चरण में नाटक आकार लेता है। बच्चों की चित्र-प्रदर्शनी आदि भी इन्हीं कार्यशालाओं से निकलती है। आज इन कार्यशालाओं में मध्यवर्ग और उच्च वर्ग के बच्चे ही अधिक आ रहे हैं परंतु ललित कला अकादमी और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की संस्कार रंग टोली आदि में फिर भी निम्न वर्ग के बच्चे शामिल हैं। शहरी मध्यवर्ग ने बच्चों के लिए इस रचनात्मक गतिविधि को शिद्दत से महसूस किया है। बाल-रंगमंच से जुड़ी अधिकांश संस्थाओं का ढाँचा व्यावसायिक है पर 'अल्लारिपु' जैसी कुछ संस्थाओं ने इस व्यावसायिकता का अतिक्रमण भी किया है। इस संस्था ने कुछ अर्सा पहले दिल्ली के एन.डी.एम.सी. के स्कूलों में भी हाशिए के बच्चों के साथ नाटक की कार्यशालाएँ की हैं। त्रिपुरारि शर्मा का कहना है-''बच्चों का रंगमंच एक खास वर्ग के बच्चों में सिमटता जा रहा है। इससे वे बच्चे अधिक जुड़ रहे हैं जो पहले ही हॉबी क्लासेज़ आदि से जुड़े रहते हैं।'' ये बच्चे स्विमिंग, डांसिंग, सिंगिग, आर्ट एंड क्राफ्ट, कुकिंग आदि से जुड़े हुए हैं। उनके लिए नाटक भी एक और हॉबी क्लास बन जाता है। और बच्चों का ये वर्ग इन कार्यशालाओं का खर्च उठाने में भी सक्षम हैं। इसके अतिरिक्त एक समस्या यह भी है कि आबादी के मद्देनज़र अब भी ऐसी कार्यशालाएँ कम ही हैं। वैसे तो शहर में घर-घर में हॉबी क्लासेज़ और अभिनय सिखाने के केंद्र खुल गए हैं पर इस कला माध्यम को इसके अनुशासन के साथ बेहतर तरीके से सिखाने वाली संस्थाओं और प्रशिक्षित संचालकों का अभाव वहाँ दिखाई देता है।''

व्यावसायिकता की बढ़ती आँधी में कला के पैमाने बिखरे हैं और कला के साथ-साथ बच्चों के साथ भी खिलवाड़ ही हो रहा है। बाल-रंगमंच के क्षेत्र से जुड़ी अनेक समस्याओं के संदर्भ में वी.के. एक समस्या की ओर इशारा करके उसके समाधान की राह सुझाते हैं। बाल-रंगमंच को मंडीहाउस की परिधि से निकालकर उसके विकेंद्रीकरण पर भी ज़ोर देना होगा। दिल्ली में प्रेक्षागृहों की कमी नहीं है ज़रूरत है वहाँ जाकर काम करने की। रंगकर्म करने की। ये अच्छी बात है कि बाल-रंगमंच से जुड़े कई लोग अपने काम के प्रति आलोचनात्मक रवैया रखते हुए सुधार की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। इनमें से अधिकांश का मानना है कि बच्चों के साथ रंगकर्म एक गंभीर काम है। एक अच्छा नाटक उठाकर चुस्त बच्चों के साथ उसे खेल देना ही बाल रंगमंच का उद्देश्य नहीं है। कई लोग वयस्कों के रंगमंचीय मानदंडों से बाल-रंगमंच को आँकने का प्रतिवाद करते हैं। नाटक के साथ-साथ बच्चों की कुंठाओं और ग्रंथियों को समझकर दूर करना भी बाल-रंगमंच के उद्देश्य में निहित है। एक तरह से देखा जाए तो बाल-रंगमंच की मुख्य शाखा बाल-मनोविज्ञान है। उसके विविध पक्षों से गुजरने के साथ ही रचनात्मकता से जुड़ा जाता है और बच्चों को जोड़ा जाता है।

रंग-निर्देशक और लेखिका त्रिपुरारि शर्मा का मानना है कि ''बाल-रंगकर्म आसान नहीं है। यहाँ की गई एक गलती बच्चे के दिल-दिमाग पर बुरा असर डाल सकती है। बच्चों को शो-पीस बनाया जाना बुरा है। इसमें उन्हीं का नुकसान सबसे ज़्यादा है।'' वाल्टर पीटर मानते हैं कि बाल-रंगमंच के विकास के लिए बड़ों की कहानी उठाकर बच्चों से करवाना उचित नहीं है। इस राह पर कई और मुश्किलों से

भी दो हाथ होना पड़ता है। मसलन, लुशिन दुबे अपना अनुभव साझा करते हुए लिखती हैं-''मैंने कई बार महसूस किया है कि बच्चों को साथ लेकर नाटक करवाना एक ऐसा काम है जिसके लिए कोई शाबाशी नहीं देता। बच्चों की कार्यशाला चलाना और अंत होने पर उन्हीं बच्चों द्वारा नाटक की प्रस्तुति करना, ये काम कितना कठिन है। कम लोग समझते हैं-माता-पिता हों या आम दर्शक। निर्देशक के रूप में मुझे पहचानना तो छोड़िए, मैं नाटक में डूबी होती हूँ कि कई बार मुझे 'अशर' समझ बैठते हैं और मैं मन ही मन हँस पड़ती हूँ।'' (रंग प्रसंग: भारतीय रंगमंच की आधुनिकताएँ-अंक चालीस, 2012) इस तरह देखें तो अर्से से बाल रंगमंच करने वाले को भी प्रशंसा या पहचान मिलना तो दूर लोगों की नज़र में वह सहायक की तरह है अध्यापक या प्रशिक्षक नहीं। लोगों के साथ रंगकर्म से जुड़े लोगों की मानसिकता में बदलाव आना भी ज़रूरी है जो बाल-रंगमंच को दोयम दर्जे का मानते हैं और इससे जुड़े कलाकारों को भी मुख्य धारा के रंगकर्मियों जितना सम्मान नहीं देते। वैसे भी बच्चों के लिए लेखन को ही कितने लोग महत्त्व देते हैं और साहित्य में इसका क्या स्थान है-यह भी किसी से छिपा हुआ नहीं है। धन और जगह की कमी भी इस क्षेत्र की एक सीमा है। 'खिलौना' से जुड़ी युवा रंगकर्मी किरण का मानना है-''थियेटर की इकोनॉमी होना ज़रूरी है। दूसरे लोगों के मन में बाल-रंगमंच के प्रति जागरूकता पैदा करना ज़रूरी है। तभी रंगमंच को देखने-सुनने वाली पीढ़ी तैयार होगी और इसका विकास होगा।''

एक ज़रूरत अभिभावकों का नज़रिया बदलने की भी है जो अक्सर मान बैठते हैं कि बच्चों को नाटक कराने का मतलब उन्हें शाहरुख-सलमान, प्रियंका-कैटरीना बनाना है। वे इसीलिए बच्चों को थियेटर से जोड़ना चाहते हैं। इनसे अलग ज़रूरत है नाटक के जरिए रचनात्मकता के मंच खोजने की और बच्चों में नाटक देखने और खेलने के संस्कार विकसित करने की क्योंकि यही फसल पककर नाटक की दुनिया को समृद्ध कर पाएगी। इसी सिलसिले में बाल-रंगमंच से जुड़ी लिशिल दुबे का कहना है-''मैं अक्सर कहती हूँ कि तुरंत कोई लॉरेंस ऑलिवर या राजकपूर नहीं बन सकता। बच्चों की प्रवृत्ति होनी चाहिए, बस यही उनके लिए सबसे बड़ी बात होती है जिसमें बच्चों को बहुत कुछ सीखने को मिलता है। पर बहुत कम माता-पिता इस संभावना को लेकर चलते हैं। आदमी का स्वभाव ही ऐसा है कि मेहनत का फल तुरंत दिखाई दे।'' इस मुद्दे पर बाल-रंगमंच की कार्यशालाएँ लेने वाले कई प्रशिक्षक एकमत हैं। माता-पिता ही क्यों जिन स्कूलों में यह कार्यशालाएँ आयोजित होती हैं या कराई जाती हैं वहाँ भी प्रधानाचार्य और शिक्षकों की आम राय यही है कि बस एक नाटक हो जाना चाहिए। कला का एक नमूना, रंग-बिरंगी तस्वीरें, चंद प्रतियोगिताएँ, कुछ पदक और ट्राफी, आकर्षित करने वाला भव्य सेट, उछलकूद। कथ्य अच्छा हो गया तो बेहतर वर्ना उछलकूद ही सही,बच्चे ही तो हैं। यही दृष्टिकोण रंगमंच के लिए भी और बच्चों के लिए भी घातक है।

बाल-रंगमंच के संदर्भ में एक ज़रूरी सवाल कुशल प्रशिक्षकों से भी जुड़ा है। बाल-रंगमंच करना एक स्किल्ड वर्क है और एक चुनौतीपूर्ण काम जिसे हर व्यक्ति अंजाम नहीं दे सकता। मैंने जितने रंगकर्मियों से बात की उनमें से अधिकांश ने यही बताया कि गर्मियों की छुट्टियों में कुकुरमुत्तों की तरह गली-गली में थियेटर सिखाया जाने लगता है। अभिभावक अपने बच्चों को किन हाथों में भेज रहे हैं इसकी कोई जानकारी लेना उन्हें जरूरी नहीं लगता। थियेटर के नाम पर बच्चों को कोई क्या सिखा रहा है इसकी परवाह भी बहुत कम लोगों को है। कोई भी जाकर बाल-रंगमंच के नाम पर बच्चों का क्या नुकसान कर देगा इस तरफ ध्यान दिया जाना चाहिए। ''राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का डिज़ायनिंग का स्टूडैंट भी बाल-रंगमंच के लिए खुद का इंतख़ाब कर बैठता है-ये क्या सही है?'' पीटर का उठाया हुआ सवाल प्रासंगिक है। दो भिन्न अनुशासन होने पर कोई कैसे अधिकारपूर्वक बाल-रंगमंच के क्षेत्र का अधिकारी हो सकता है? यही बात 'खिलौना' संस्था के साथ जुड़े साजिद ने भी कही। बाल-रंगमंच की दिशा में बीस साल से सक्रिय मनीष सैनी जो बतौर एक्टर टीचर देश की कई बाल-रंगमंच कार्यशालाओं का हिस्सा रहे हैं, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, अल्लारिपु और अमेरिकन इंडो फांउनडेशन की फंडिग से आयोजित कई कार्याशालाओं से जुड़े रहे हैं उनकी चिंता भी कुछ इसी तरह की है।

ये आम बात है कि बाल-रंगमंच से जुड़े लोग या तो उस दिशा के लिए प्रशिक्षित नहीं हैं या फिर कम अनुभवी हैं। पर इसके साथ -साथ एक दूसरा पहलू भी है कि बाल-रंगमंच के क्षेत्र में इस मुद्दे को लेकर एक जागरूकता भी पैदा हो रही है। ऐसे प्रयास बहुत अधिक तो नहीं हुए हैं पर एशिया का पहला औपचारिक प्रशिक्षण केंद्र त्रिपुरा में पिछले दो-तीन साल से सक्रिय है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, थियेटर इन एजुकेशन कंपनी, त्रिपुरा विंग इसी तरह की एक इकाई है। इसके आरंभ से जुड़े रंगकर्मी मनीष सैनी के अनुसार ''अभी यहाँ से दो बैच तैयार हुए हैं। इसमें प्रत्येक वर्ष बीस लोग लिए जाते हैं और दस सीट त्रिपुरा के लिए आरक्षित हैं। चालीस साल तक के लोगों को बाल-रंगमंच की विधिवत् ट्रेनिंग दी जाती है। यह सरकारी स्तर का पहला प्रयास है। इसमें हमारा काम स्टूडैंट को मेंटर करने का है।'' साल भर के इस कोर्स में थियेटर की प्रक्रिया, शिक्षाशास्त्र, थियेटर इन एजूकेशन की थ्योरी, ड्रामा इन एजुकेशन, ड्रामा के संदर्भ में क्लास रूम टीचिंग आदि का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है। इस तरह ये प्रशिक्षार्थी एक साल के दौरान बाल-रंगकर्म करने की बकायदा ट्रेनिंग लेते हैं। पर अभी ऐसे कई प्रशिक्षण केंद्र खोले जाने की ज़रूरत है।

बात जब बाल-रंगकर्म को पाठ्यक्रम से जोड़े जाने की होती है तो प्राथमिक शिक्षा के दो प्रमुख कोर्स डाइट (डिस्ट्रिक इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग) और बी.एलएड (बेचेलर ऑफ एलिमेंट्री एजूकेशन) में बाल-रंगमंच की ओर खास ध्यान दिया गया है। राजधानी दिल्ली में डाइट के कई केंद्र हैं और बी.एल.एड. दिल्ली विश्वविद्यालय के सभी छह महिला कॉलेजों में चलने वाला तीन सालाना कोर्स है। यहाँ अधिकतर प्रशिक्षक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से जुड़े अधिकतर फ्रीलांस प्रशिक्षक जाते हैं। इस कोर्स में पहले और तीसरे साल में रंगमंच

की उपयोगिता को शिक्षा से जोड़कर काम किया जाता है। अनेक वर्षों से इस कोर्स से सीधे तौर पर जुड़े मनीश सैनी का कहना है-''1995 से दिल्ली विश्वविद्यालय में जारी इस कोर्स में अस्सी कक्षाओं का प्रावधान है। पहले साल में हम इन्हें व्यक्तित्व के आधार पर मांजने का काम करते हैं। अभिव्यक्ति पर और थियेटर टूल्स पर काम अधिक करते हैं। कोर्स के तीसरे साल में जब ये बच्चे स्कूलों में टीचिंग से जुड़ा व्यावहारिक अनुभव लेने जाते हैं तब ये अपने विविध विषयों को रंगमंच से जोड़कर बच्चों के लिए विषय को सुगम बनाते हैं और नया शिक्षाशास्त्र रचते हैं।''

भारत के कई हिस्सों में बाल-रंगमंच की गतिविधियाँ गंभीरता से आयोजित की जा रही हैं। कई संस्थाएँ, विभिन्न ट्रस्ट,कई स्कूल इस काम को संजीदगी से आयाम भी दे रहे हैं। वैकल्पिक शिक्षा से जुड़ी 'शिक्षांतर' उदयपुर, 'लोकदृष्टि' उड़ीसा, 'निदान' पटना।

इसी तरह बाल-रंगकर्म के क्षेत्र में चर्चित नाम बलवंत ठाकुर का भी है जो जम्मू में बाल-रंगमंच से जुड़े हैं। कुछ समय पहले दिवंगत हुईं वीना साराभाई ने भी 'श्रेयस फ़ाउण्डेशन' के जरिए अहमदाबाद में बाल-रंगमंच को नए आयाम दिए थे। इसी तरह इलाहाबाद में प्रो. सचिन तिवारी और महाराश्ट्र में अभिनेत्री स्वरूप संपत भी इस दिशा में सक्रिय हैं। मुम्बई में बैरी जॉन, जो पहले काफी समय तक दिल्ली में 'इमागो इंटरनेशनल स्कूल' में सक्रिय रहे वे आज 'एक्टिंग स्कूल मुंबई' के जरिए काम कर रहे हैं। दिल्ली में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की थियेटर इन एजुकेशन कंपनी एकमात्र ऐसी संस्था है जो साल भर बाल-रंगमंच की दिशा में गतिशील रहती है। गर्मियों में कार्यशालाएँ, संडे क्लब, अपने खासे चर्चित दो उत्सवों-'जश्न-ए-बचपन' और 'बाल-संगम' के साथ टी. आई. ई. सारे साल व्यस्त रहती है। 'जश्न-ए-बचपन' में सारे भारत से विभिन्न भाषाओं में तैयार बाल-नाटक की प्रस्तुतियाँ होती हैं तो 'बाल-संगम' नृत्य आधारित होता है। ये एक तरह से लोकोत्सव है। इसके अतिरिक्त 'सलाम बालक ट्रस्ट', 'क्राई' जैसी संस्थाएँ भी बाल-रंगमंच को प्रमुखता देती हैं। इनके अतिरिक्त कई स्कूल तो अब बाकायदा ड्रामा टीचर रखने लगे हैं। ये अलग बात है ये तस्वीर बड़े स्कूलों की ही है।

जहाँ तक बाल-रंगमंच की कार्य शालाओं से निकली स्क्रिप्ट्स की बात है तो उनका विधिवत् रूप से दस्तावेज़ीकरण नहीं हुआ है। इस दिशा में भी गंभीर प्रयास किया जाना जरूरी है। दरअसल अधिकांश कार्य शालाएँ अपनी गतिविधियों के साथ एक नाटक की प्रस्तुति के बाद बिखर जाती हैं। यही नहीं उनके पास नाटकों के लिखित रूप को सही आकार देने और किताब की शक्ल में लाने में दो प्रमुख समस्याएँ सामने आती हैं। पहली तो संस्थाओं के पास होने वाला समय। स्क्रिप्ट्स को किताब की शक्ल देने में पर्याप्त समय, ऊर्जा, गंभीरता और रचना कौशल चाहिए। उसमें सुधार-संपादन की भी गुंजाइश रहती ही है। जिस तरह बच्चों को नाटक हर व्यक्ति नहीं करा सकता उसी तरह नाटक का लिखित ड्राफ्ट भी हर व्यक्ति तैयार नहीं कर सकता। फिर अधिकांश संस्थाएँ निर्धारित समय के बाद खत्म सी हो जाती हैं, तो यह काम उपेक्षित रह जाता है। दूसरी एक बड़ी समस्या आर्थिक संसाधन की भी है। इसकी कमी के कारण इच्छा होते हुए भी ये काम पीछे छूट जाता है। नहीं तो प्रत्येक वर्श इन कार्यशालाओं से मौलिक सोच के अनेक नाटक आकार लेते हैं। उनमें से कई बहुत बेहतर भी होते हैं। बाल-रंगमंच की दिशा में इस पहलू पर विचार किया जाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि इस दिशा में कार्य नहीं किया गया है। कई संस्थाएँ अपनी क्षमता और ऊर्जा से इस दिशा में भरसक प्रयत्न कर रही हैं। 'उमंग' ने 2004 में अपने रजतपर्व(पच्चीस साल पूरे होने पर) एक किताब प्रकाशित की। किताब की भूमिका में अशोक वाजपेयी ने लिखा है-''उसके रजतपर्व पर हमने हिंदी के कुछ लब्धप्रतिष्ठ लेखकों से आग्रह किया कि वे बच्चों के लिए कुछ लिखने का कष्ट करें। हमें बहुत प्रसन्नता है कि लेखकों ने हमारे आग्रह को स्वीकार किया। नतीजतन इस संचयन में बाल-नाटक, कहानियाँ और एक पटकथा भी शामिल है। यह सुखद संयोग है कि शायद ही इससे पहले इतने सारे लेखकों ने बच्चों के लिए कुछ लिखा हो। हिंदी में बड़े लेखक बच्चों के लिए लिखने से कतराते रहे हैं जबकि अन्य भारतीय भाशाओं के मूर्धन्य लेखकों ने बच्चों के लिए लगभग उज्ज्वल परंपरा के रूप में लिखा है।''(उमंग-संपादक, अशोक वाजपेयी, भूमिका से)

राजकमल प्रकाशन से आई इस किताब में श्रीलाल शुक्ल (आविष्कार जूते का), राजेश जोशी (ब्रह्मराक्षस का नाई), रमेश चंद्र शाह (टिम्बकटू), गिरिराज किशोर (मोहन का दुख), सुधा अरोड़ा(ऑड मैन आउट उर्फ बिरादरी बाहर), कमलेश्वर (जंगे आज़ादी), उदय प्रकाश (अनमोल खजाना) आदि नाटक शामिल हैं। इसके अतिरिक्त भोपाल से निकलने वाली बाल-विज्ञान पत्रिका 'चकमक' ने भी कई बार अच्छे बाल-नाटक प्रकाशित किए हैं। पर दुर्भाग्य ये है कि देश भर में वर्षों से कार्यरत बाल-रंगमंच की अनेक कार्यशालाएँ बहुत अच्छे नाटकों को प्रस्तुत करने के बाद भी उनका लिखित दस्तावेज़ नहीं कर पाई है। वर्षों से कार्यरत राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की शाखा टी.आई.ई. भी इस दिशा में निष्क्रिय है। उसके द्वारा तैयार किए 'ये भी जंगल वो भी जंगल', 'लाल लाल हाथी', 'रानी और पिंटू' के अतिरिक्त खलील जिब्रान की कहानी पर आधारित युवा रंगकर्मी मनीष सैनी की कार्यशाला में तैयार 'पागल जॉन'(2012) और मुल्ला नसीरुद्दीन को आधार बनाकर तैयार कराया गया 'शाही फीता लाल' का दस्तावेज़ीकरण नहीं हुआ जबकि ये नाटक उनके सालाना उत्सव 'जश्न-ए-बचपन में भी चयनित हुआ था। कथ्य की दृष्टि से काफी सशक्त इन नाटकों में क्रमश: धर्म की रूढ़िबद्धता, मानवविरोधी छवि और सामाजिक-राजनीतिक भ्रष्टाचार को दिखाया गया है। इसी तरह वी.के. के ग्रुप 'खिलौना' की 2013 की प्रस्तुति 'पंचम वेद' एक बेहतर नाटक था। ये नाटक खेल-खेल में बच्चों को नाट्यशास्त्र की अवधारणा और नाटक को पाँचवा वेद ठहराने की बात बतलाते हुए नाटक के कई बिंदुओं को उठाने में समर्थ था। पर बात वहीं आकर ठहर जाती है कि ये सभी नाटक इम्प्रोवाइजेशन की प्रक्रिया से निकलते हैं और बेहतरीन होने के बावजूद लिखित स्क्रिप्ट न होने की वजह से स्थायी तौर पर सुरक्षित नहीं रहते। देखा जाए तो ये एक

तरह से बाल -रंगमंच के नुकसान के साथ बाल-साहित्य का भी नुकसान है।

बाल-रंगमंच के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाने वाले फैज़ल अल्काज़ी का मानना है ''इन कार्यशालाओं से बच्चों को ऐसा माहौल मिल रहा है कि वे खुशी से खुलकर चीख सकें, हँस सकें, अपनी बात कह सकें। लेकिन अभी बहुत से काम बाकी हैं। बच्चों के साथ रंगकर्म करने वाले दलों, संस्थाओं को निरंतर कई कार्यशालाओं को करने की ज़रूरत है। और इसके लिए प्रशिक्षकों को बाकायदा ट्रेनिंग की भी जरूरत है। दूसरा बड़ा काम स्क्रिप्ट बैंक का भी किया जाना चाहिए। बच्चों के नाटकों की अच्छी स्क्रिप्ट बनें। हिंदी से इतर मराठी, गुजराती आदि अहिंदी भाषी बाल-नाटकों का अनुवाद हो। कम कीमत पर किताबें छपें जिसमें दस-बारह बाल-नाटकों की स्क्रिप्ट हों। यह सब बेहद जरूरी कदम हैं बाल-रंगमंच की दिशा में।''

इस क्षेत्र से जुड़ाव और गंभीर सरोकारों से जुड़े रंगकर्मियों में से अधिकांश का मानना यही है कि बाल-रंगमंच का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और विविध आयामी भी। इसमें नाटक के साथ-साथ कई और स्तरों पर काम किए जाने की सख़्त ज़रूरत है। उनका मानना है कि शिक्षाशास्त्र में नाटक की अहमियत को उभारने के मद्देनज़र नीतिगत निर्णय अनिवार्य हैं। कई बार पाठ्यक्रम में खानापूर्ति की तरह नाटक लगा दिया जाता है पर इसकी सृजनात्मक क्षमता को सुरक्षित रखने के लिए समय-समय पर इसका मूल्यांकन भी ज़रूरी है। प्राथमिक स्तर भी नाटक को एक प्रयोगशाला की तरह देखा जाना ज़रूरी है, इस प्रयोगशाला में बच्चे ही नहीं, माता-पिता, टीचर भी शामिल होने चाहिए। नाटक कुछ दिनों का तमाशा न होकर एक सालाना और गंभीर प्रक्रिया बन सके। एक मुख्य बात यह भी है कि इस दिशा में कुछ पूर्वाग्रहों का निषेध और खंडन भी बड़ा कदम है। मसलन- 'नाटक से क्या मिलेगा?' या यह तुरंत परिणाम दिखाए, दस दिन में नाटक तैयार हो जाए क्योंकि पढ़ाई का हर्जा होगा, नाटक में क्या मुश्किल है प्रशिक्षित रंगकर्मी की क्या ज़रूरत है तमाशा तो कोई भी टीचर करवा लेगा, नाटक तो प्रतियोगिताएँ जिताने और पदक दिलाने का मंच है।''इस तरह के जड़ पूर्वाग्रह बाल-रंगकर्म को तो क्षति पहुँचाते ही हैं बच्चे के मन में भी सृजनात्मक गतिविधियों के प्रति एक अगंभीर और नकारात्मक रवैया भर देते हैं। इस तरह देखा जाए तो बाल-रंगमंच के क्षेत्र में ज़रूरत सतत् प्रयास की है।

तमाम पूर्वाग्रहों के और सीमाओं के नई शैली के विकास, संस्कृति से जुड़ाव, लोक को वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार आयाम देना, बच्चों में असफलता के भय को दूर करने का प्रयास करना, बाल सराकारों के प्रति दायित्व अनुभव करना और इस क्षेत्र के रचनात्मक आयाम और प्रयोगों पर बल देना-जैसी कितनी ही बातें बाल-रंगमंच की दिशा में किए गए मौलिक कार्यों की फेहरिस्त दर्शाती हैं। बच्चों से जुड़ी इन देशव्यापी संस्थाओं का काम असल में उन कुम्हारों का काम है जो तेज़ रफ्तार जीवन में धीमी और सधी गति से कच्ची मिट्टी से पक्के घड़े तैयार कर रही हैं।

संदर्भ

1. उमंग, अशोक वाजपेयी (संपा), राजकमल दिल्ली

2. रंगप्रसंग: भारतीय रंगमंच की आधुनिकताएं, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

3. बाल-रंगकर्म के क्षेत्र से जुड़े रंगकर्मियों त्रिपुरारि शर्मा, बैरी जॉन,फैज़ल अल्काज़ी, विभा छिब्बर, वी.के., किरण, मनीश सैनी, वाल्टर पीटर, साजिद से बातचीत।

❐❐❐

ई-112, आस्था कुंज, सेक्टर 18, रोहिणी, नई दिल्ली 110018

मोबाइल 9811585399

ईमेल : pragya3k@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। कृपया रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। -संपादक

shivna.prakashan@gmail.com

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)। शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : सीहोर, मध्य प्रदेश
2. प्रकाशन का अंतराल : त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं । स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ। (यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

हस्ताक्षर

पंकज कुमार पुरोहित
प्रकाशक

एक सप्ताह में ही प्रथम संस्करण सोल्ड आउट हो जाने का कीर्तिमान रचने वाली शिवना प्रकाशन की पुस्तक

व्हाट्स-एपिया रोमांस (लेखक : समीर यादव)

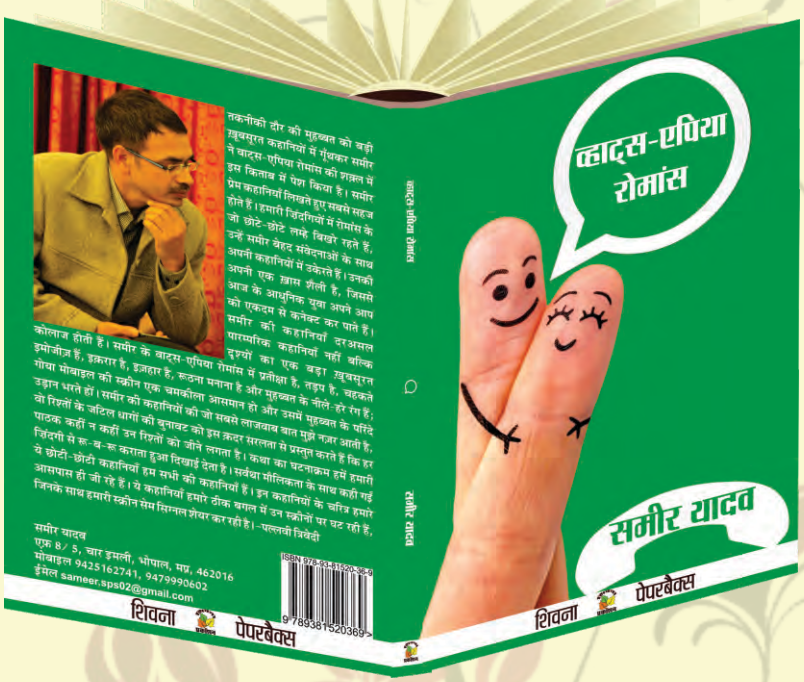

राज एक्सप्रेस
शब्दउत्सव
सुविचार
जो सदा प्रसन्न रहता है उसके अन्दर आलस्य नहीं हो सकता। आलस्य सबसे बड़ा दुर्गुण है।
rajexpresschp@gmail.com
छतरपुर, रविवार 11 सितंबर, 2016

एक किताब ने घोल दिया फिज़ा में रोमांस

मध्यप्रदेश के पुलिस अधिकारी समीर यादव ने लिखी व्हाट्स-एपिया रोमांस

छतरपुर। दुनिया से रोमांस कभी खत्म नहीं होता। यह दो चाहने वालों के बीच हमेशा रहता है। वक्त के साथ भले ही इसे अपने माध्यम बदलने पड़ें। बदलते वक्त के साथ रोमांस के भी माध्यम बदले हैं। इन दिनों युवा पीढ़ी में सोशल मीडिया का एक प्रचलित एप्लीकेशन व्हाट्सएप जबरदस्त चर्चा में है। यह सिर्फ एक एप्लीकेशन नहीं बल्कि इश्क के परिंदों का आशियाना बन गया है। व्हाट्सएप से कैसे रोमांस परवान चढ़ता है इसी खूबसूरत विषय पर लिखी गई किताब व्हाट्स-एपिया रोमांस इन दिनों देश भर में चर्चा का विषय बनी हुई है। खास बात यह है कि यह किताब सरकार के भाग-दौड़ वाले व्यस्त महकमे पुलिस में काम करने वाले राज्य पुलिस सेवा के अधिकारी समीर यादव के द्वारा लिखीगई है जो इन दिनों भोपाल में पदस्थ हैं। प्रस्तुत है इस किताब पर साहित्यक समीक्षा।

ISBN: 978-93-81520-36-9

व्हाट्स-एपिया रोमांस (समीर यादव)

प्रथम संस्करण : अगस्त 2016

द्वितीय संस्करण : सितम्बर 2016

मूल्य : 100.00 रुपये, पृष्ठ : 72

पुस्तक को ऑनलाइन ख़रीदने हेतु लिंक्स :

https://paytm.com/shop/p/whatsappia-romance-9789381520369_114799
http://www.amazon.in/dp/9381520364
https://www.flipkart.com/whats-appia-romance/p/itmehwj5rgzkdyjz?pid=9789381520369

ऐसी कृति जिसमें, व्हाट्स एप के ज़रिये कहीं न कही बल्कि हर कहीं ही मुहब्बत के इज़हार, इकरार और पुरानी यादों से जुड़े हुए तार, जो मन को झंकृत करते हैं। पल दो पल के लिए ही सही, मीठी सी याद बन गुदगुदाते हैं। इन्हीं फूल से भी नाज़ुक रिश्तों के ताना बाना को, बख़ूबी से, ख़ूबसूरती से बुना गया है। ये कहानियाँ, पात्र, घटनाक्रम हमें अपनी स्मृतियों में लेकर जाते हैं....पढ़कर लगता है जैसे हमारे ही तो ज़ज़्बातों की दास्ताँ है ये.... –**सपना शिवाले**

जैसा नाम है पुस्तक का व्हाट्स–एपिया रोमांस उसका असर होना शुरू हो जाता है । तसल्ली इत्मीनान से हर बात हर वाक्य हर शब्द को रूमानियत से महसूस करने का अहसास होने लगता है। हर किरदार को थोड़ी देर जी लेने का मन करता है। ये भी एक पुस्तक की खासियत है कि पाठक को अपने में बाँध के रखे। कई वाकिये अपने से लगते हैं, कई किरदार आपने हमने जिए है ।पर प्रेम या रोमांस का ये रूप भी उकेरा जा सकता है, सोच से परे है । –**मीना शर्मा**

अब एक सच्चाई, अक्सर मुहब्बत जल्दी जवान हो जाती है और साहित्यकार बाद में, व्हाट्सएप की इसत्लाहों तक पहुँचने में अभी साहित्यकार को पच्चीस साल लगेंगे, मगर ये करिश्मा कर दिखाया है समीर यादव की क़लम ने, कि व्हाट्सएप की सारी इसत्लाहों को, उसके इशारों किनायों को उसके टेक्निकल इशूज़ के साथ इस मौजूदा नस्ल के दिल के गुबार को कागज़ पर खूब सूरती से संजोया है उसके लिए मैं उन्हें साथ मुबारक देता हूँ। –**अना कासमी**

यह नए कलेवर की नई तकनीक में सदाबहार कन्टेन्ट रोमांस को लेकर अपने तरह का अनूठा और बेहतरीन साहित्यिक प्रयोग है, खासकर ऐसे समय में जब आज के युवा वर्ग के पास कहानी पढ़ने का न तो पेशेंस है, न समय और न ही इंट्रेस्ट। ऐसे संक्रमण काल में समीर यादव बहुचर्चित और तेज़ी से वापरने वाले सोशल मिडिया व्हाट्स अप्प की तकनीकी समझ के कैनवास पर निजी –सार्वजनिक स्रोत से बटोरे हुए रोमांस को केंद्रीय विषय बनाकर टेक्स्ट फार्मेट में कहानी लिखकर कूल डूडस से लेकर रोमांस के सभी चाहने वालों के बीच अपनी पैठ बनाने में सफल हुए हैं। –**उमेश तिवारी**

'व्हाट्स–एपिया रोमांस' अनूठा प्रयोग है। इसमें तकनीक का तड़का है। कहानियाँ कलेवर में छोटी हैं... याद रखिये सिर्फ कलेवर में, प्रभाव में नहीं। अतिशय तात्कालिकता और अति–सूचना की वजह से उपजते अविश्वास के इस दौर में इस प्रयोग की पाठकीय स्वीकृति में निश्चित है कि समय लगेगा और ये भी देखना दिलचस्प होगा कि अगले कदम में तकनीक ऊपर आएगी या शास्वत सार्वकालिक प्रेम, क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी का विस्फोट अभी रुका नहीं है और प्रेम भी अभी चुका नहीं है... और चूका तो कभी भी नहीं!! –**अमित श्रीवास्तव**

व्हाट्सऐप जैसे माध्यम पर लिखी जा रही प्रेम की नई कहानियों के माध्यम से बदलते समय को बख़ूबी दर्ज किया है समीर ने इस किताब में। –**अशोक कुमार पांडेय**

एक अलग तरह की किताब। जिसमें व्हाट्स–एप पर सवार इश्क है। इंतज़ार है। चाह का रेतीला संसार है। धड़कनों को बयाँ करने वाले शब्द हैं। मुग्ध करने का सामर्थ्य इस युवा कलमकार में है। समीर यादव का लेखन का अलहदा अंदाज है। –**कैलाश वानखेड़े**

हरे आवरण में लिपटी मद्धिम सफ़ेद पन्नों पर प्यार भरे अक्षर समेटे किताब जब हाथ में आई तो पता न था कि इस किताब में रोमांस का ऐसा माहौल होगा। पर जब पन्ने पलटते गए और दिल मचलता रहा तब समझ आया की रोमांस का नया जादू समेटा हुआ है इस ग्रीन बैंक ने... ग्रीन बैंक इसीलिए भी कहूँगा कि इसमें प्यार की,रोमान्स की सारी जमा पूँजी है। –**पंकज मलिक**

इन कहानियों को पढ़ते हुए, मुझे ऐसा विश्वास है कि, आधुनिक परिवेश में, समय के साथ–साथ आगे बढ़ती हुई हिन्दी कहानी इसी रूप में, सामने आएगी। यह भी कि, समीर नई कहानी के इस युग के पहले कहानीकार हैं जो समय की रिद्म को पकड़ पा रहे हैं। –**संजीव तिवारी**

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9584425995,
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

Shivna Prakashan Books Available At All Leading Online Shopping Stores

http://www.amazon.in
http://www.flipkart.com
https://www.paytm.com
http://www.ebay.in

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● October-December 2016 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

छपी पुस्तक धारा 121/1 (घ) के अंतर्गत

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।